जैन भारती

मई 2014 • वर्ष 62 • अंक 5 • वार्षिक ₹ 200

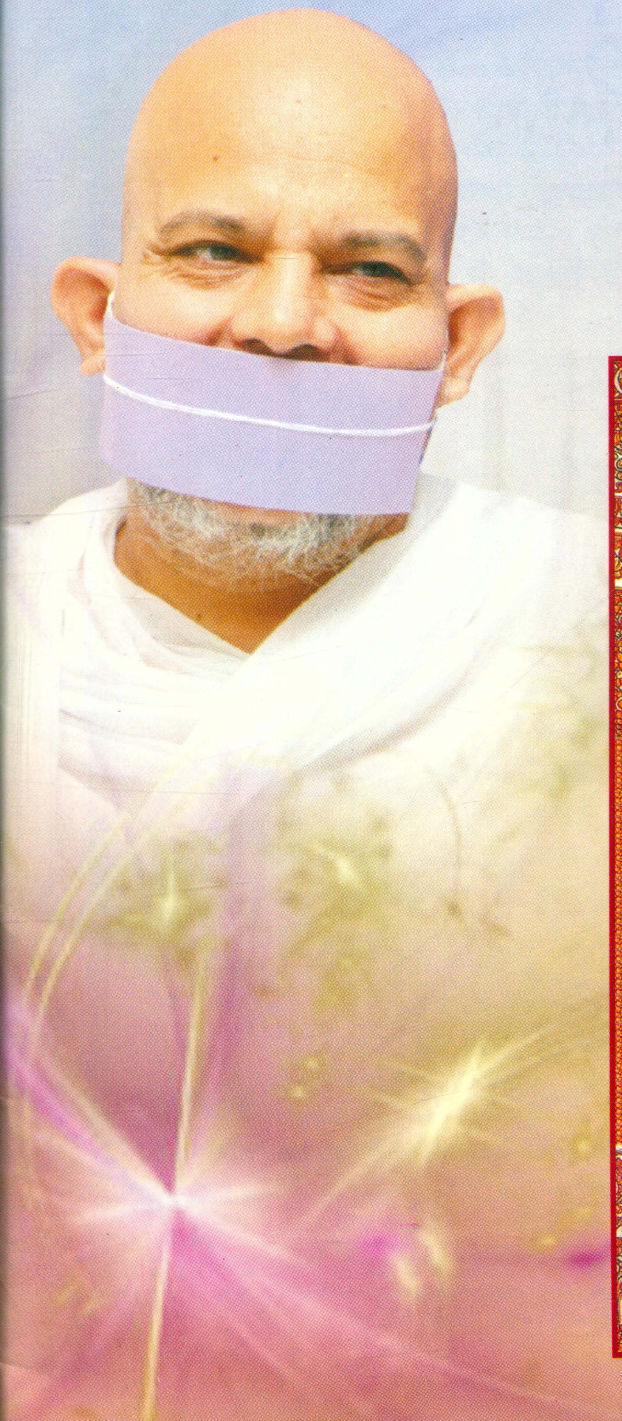

पदाभिषेक दिवस पर
अभिवंदना

VAB VENTURES
Leadership with Trust...
VAB Ventures Ltd.
60 B Chowringhee Road, Suite : 3/2/1, 3rd Floor
KOLKATA 700020, West Bengal, India
Tel. : (+91) 3322900112-114 | Fax : (+91) 3322900115
E-mail : arihantbaid@vabventures.in, www.vabventures.in
Sugar ◆ Pharmaceuticals ◆ Biotech ◆ Real Estate ◆ Financial Services ◆ Education ◆ Infotech

जैन भारती

वर्ष 61 • मई 2014 • अंक 5

अनुक्रम

1.	संपादकीय		5
2.	शैशव के विरल प्रसंग	–आचार्य महाप्रज्ञ	7
3.	दुर्लभ त्रयी के संगम : आचार्य महाश्रमण	–साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा	11
4.	विनम्रता के शिखर पुरुष : आचार्य महाश्रमण	–साध्वी विश्रुतविभा	14
5.	जीवट व्यक्तित्व : आचार्य महाश्रमण	–साध्वीश्री सुमतिप्रभाजी	17
6.	श्रम के पर्याय : आचार्य महाश्रमण	–सूरजकरण दूगड़	20
7.	मैं और मेरा भाई	–श्रीचन्द दूगड़	21
8.	मुझे गर्व है	–शिक्षक : रेवंतमल भाटी	22
9.	विकास की उड़ान : निर्माण का आह्वान	–दीक्षा गुरु : मुनिश्री सुमेरमलजी	24
10.	कथा दो पन्नों की	–कन्हैयालाल छाजेड़	27
11.	त्वमेव माता च पिता त्वमेव	–नचिकेता बालमुनि मृदुकुमार	29
12.	कैसे हुई शुरुआत आचार्यों की अंतरंग परिषद में?	–आचार्य महाश्रमण की कलम से...	31
13.	गुरुदेव तुलसी ने दिया बोध पाठ		38
14.	आचार्य महाप्रज्ञ से मिला आशीर्वाद		40
15.	आप तीर्थंकर स्वरूप हो	–मुनि राजकरण	43
16.	नयन युगल	–मुनि जितेन्द्रकुमार	45
17.	पंचाचार के अप्रमत्त साधक आचार्य महाश्रमण	–शासनश्री मुनि राकेश कुमार	46
18.	अभिनंदन सम्राट का नहीं : श्रम का	–साध्वी शुभ्रयशा	49
19.	पल पल की पहरेदारी	–साध्वी जिनप्रभा	51
20.	अभिनंदन सत्य के मानसरोवर का	–साध्वी संघमित्रा	53
21.	कैसे करें वर्धापित का वर्धापन	–साध्वी मंगलप्रज्ञा	55
22.	प्रबंधन के प्रयोगधर्मा महर्षि	–मुनि पीयूष कुमार	58
23.	कविता	–मुनि जय कुमार	60
24.	वीर्य से विभुता की ओर आचार्य महाश्रमण	–साध्वी राजीमती	61

सम्पादक
डॉ. शान्ता जैन

आवरण
गौरीशंकर

संपादकीय सम्पर्क सूत्र : डॉ. शान्ता जैन, जैन विश्व भारती विश्वविद्यालय, लाडनूं, 341306

प्रकाशकीय कार्यालय : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, तेरापंथ भवन-महावीर चौक, गंगाशहर, बीकानेर 334401

प्रधान कार्यालय : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता 700001

सदस्यता शुल्क : वार्षिक 200/- • त्रैवार्षिक 500/- • दसवर्षीय 1500/- रुपए

* Contact us at: jainbharatitms@gmail.com

जय जय ज्योति चरण, जय जय महाश्रमण

दो महापुरुषों की अनुपमेय कृति का अभिनंदन

आचार्य तुलसी और आचार्य महाप्रज्ञ बीसवीं सदी के विश्वविख्यात नाम हैं। उस युग में दोनों महापुरुषों ने एक नई क्रांति का शंखनाद किया। धार्मिक और बौद्धिक जगत के बीच अध्यात्म के नए क्षितिज उद्घाटित किए। उनके द्वारा प्रदत्त अवदानों के लिए मानव जाति उनकी चिरऋणी रहेगी।

आचार्यश्री महाश्रमण उन महान कुशल शिल्पकारों की एक अनुपमेय कृति है। गुरुद्वय ने केवल आपके व्यक्तित्व को ही नहीं निखारा, अनेकानेक गूढ़ रहस्यों से भी आपको अवगत कराया। अपनी साधना, विनम्रता और सेवा के द्वारा आपने गुरु का दिल जीता। उनकी प्रत्येक कसौटी पर आप शत-प्रतिशत खरे उतरे।

गुरुदेव तुलसी कहा करते थे–'महाश्रमण बहुत भला है, बहुत विनीत है। मैं कहता हूं कि साधु हो तो ऐसा हो।' यही नहीं उन्होंने आपको महाश्रमण पद पर प्रतिष्ठित कर आंतरिक प्रसन्नता की अनुभूति की।

आपकी अध्यात्मनिष्ठा, आचारनिष्ठा, विनम्रता आदि विशेषताओं को देखकर आचार्य महाप्रज्ञ ने आपको अपने उत्तराधिकारी के रूप में मनोनीत किया। लगभग चौबीस वर्षों तक आचार्य महाप्रज्ञ के पवित्र आभामंडल में आपने अपनी कर्मजा शक्ति को विकसित ही नहीं किया, अपितु उसके द्वारा उनके सपनों को साकार करने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। युवाचार्य के रूप में आप उनके प्रत्येक कार्य में अभिन्न रूप से जुड़े रहे। आचार्य महाप्रज्ञ महाश्रमण के साथ अद्वैत का अनुभव करते थे।

आचार्य महाप्रज्ञ कहते थे–'मैं अपना सौभाग्य मानता हूं कि मुझे महाश्रमण जैसा उत्तराधिकारी मिला। इनकी विनम्रता, सहिष्णुता और सहजता ने मेरे मन को आकृष्ट किया। महाश्रमण उपयोगी हैं, क्योंकि उनमें श्रमशीलता है, स्वार्थ का विसर्जन है, कष्ट-सहिष्णुता है और परमार्थ की चेतना है।'

दो युगप्रधान आचार्यों के द्वारा निखारे गए आचार्यश्री महाश्रमण गुरुद्वय की कल्पनाओं और अधूरे कार्यों को पूर्णता तक पहुंचाने के लिए कृतसंकल्प हैं।

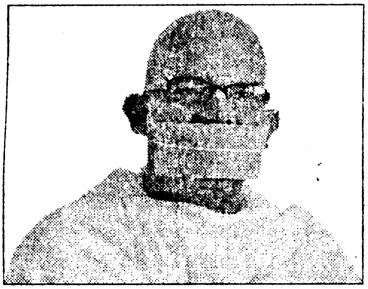

करें अभिवंदना नए जनम की

आओ करें अभिवंदना
महातपस्वी आचार्य महाश्रमण की,
झूमर नेमा कुल में जनमे मानव देह की,
संसार से संन्यस्त पावन चेतना की,
आचार्य संपदाओं से संपन्न
एक महान साधक आचार्य महाश्रमण की।
इस अभिवंदना में
शब्दों का अक्षय कोश भले न उतरे कलम से
पर संयम की शुरुआत अवश्य करें
ताकि महत्त्वाकांक्षाओं को विराम मिल सके।
इस अभिवंदना में
नाम के आगे विशेषणों की उपाधियां न भी लगाई जाएं
पर गुरु की गुणात्मक विशेषताओं की परछाइयां अवश्य पकड़ें
ताकि सही मायने में उनके अनुयायी बन सकें।
इस अभिवंदना में
गीत, संभाषण, मुक्तक-छंद, अभिनंदन पत्र भले प्रस्तुति न पाए
पर अपने प्रति इतने ईमानदार अवश्य बनें कि
गुरु का उपदेश हमारा आचरण बन सके।
इस अभिवंदना में
बहुत बड़े-बड़े वायदों को पूरा करने का वायदा न भी करें
पर कुछ ऐसा कर दिखाएं कि
गुरु का विश्वास हमसे कोई नया इतिहास रचा सके।

इस अभिवंदना में
हमारे द्वारा क्रांति की रफ्तार भले ही तेज न हो
पर जीवन बदलने की संभावनाएं अवश्य खोज ली जाएं
ताकि गुरु का आह्वान नई रोशनी बिछा सके।
इस अभिवंदना में
तपस्याओं के रिकॉर्ड, अणुव्रती संकल्प पत्रों के बंडल और
हजारों सामायिक, माला-जप के आंकड़े
भले प्रस्तुत न कर सके
पर एक छोटा-सा दीया इस सोच का अवश्य जगा लें कि
जैन जीवनशैली के हम आदर्श बन सकें।
इस अभिवंदना में
अच्छा करने और अच्छा बनने के लिए
गुरु के उपदेश, आज्ञा या आह्वान का भले इंतजार न करें
पर हम उनके मौन संवाद को अवश्य सुनें,
आंखों की भाषा अवश्य समझें और वही करें जो वे चाहें।
इस अभिवंदना में
मांगने के नाम पर हम गुरु से कुछ न मांगें
सिवाय आशीर्वाद के,
और देने के नाम पर गुरु चरण में और कुछ न दें
सिवाय श्रद्धा और समर्पण के ।
इस अभिवंदना में
गुरु की आध्यात्मिक पहरेदारी में
जीवन का सफरनामा यूं चले कि
मन संसार से संन्यस्त रहे,
भावों में पवित्रता रहे और कर्म में जागरूकता रहे।

शान्ता जैन

शैशव के विरल प्रसंग

आचार्य महाप्रज्ञ

अज्ञात में अनेक घटनाएं होती हैं। वे जब ज्ञात जगत में आती हैं तब उनकी प्रतिक्रियाएं होती हैं। मरुदेवा के चौदह स्वप्न एक अज्ञात जगत की घटना है, सूक्ष्म जगत की घटना है। स्थूल जगत में न बैल आया, न हाथी आया, न सिंह आया। कुछ भी नहीं आया, किंतु मानसिक स्तर पर, अवचेतन मन के स्तर पर जो कुछ घटित होता है उसका अर्थ ज्ञात जगत में निकाला जाता है। उस समय कोई अर्थ बताने वाला नहीं था।

कुछ आचार्य कहते हैं—इन्द्र आया और उसने सपनों की व्याख्या की। यह अलौकिक घटना है, इसलिए लौकिक दृष्टि से हम इस पर विचार नहीं कर सकते। कुछ अलौकिक घटनाएं होती हैं जिनका वर्तमान लोक से साक्षात संबंध नहीं होता और उनकी लौकिक व्याख्या भी नहीं की जा सकती। कुछ भी हो, उन सपनों ने इतनी सूचना अवश्य दे दी कि यह कोई सामान्य कुलकर जन्म नहीं ले रहा है। यह कोई अतिशय, विशिष्ट शिशु जन्म ले रहा है। यह आभास नाभि को भी हो गया, मरुदेवा को भी हो गया और परिपार्श्व के वातावरण में भी हो गया। जो होने वाला है, उसका आभास पहले मिल जाता है। इसीलिए यह कहावत भी चल पड़ी—जो आने वाला है, उसके पैर 'पालने' में ही पहचान लिए जाते हैं।

समय बीता, युगल का जन्म हुआ। एक शिशु और एक कन्या। जन्म भी असाधारण रहा। वातावरण भी असाधारण बन गया। जब कोई विशिष्ट आत्मा जन्म लेती है वहां का सारा वातावरण आकर्षक, मोहक बन जाता है। आकर्षण सबका इधर जुड़ गया। यदि अलौकिक घटना की बात करें तो कहा जा सकता है—इन्द्र आया, देवता आए, जन्मोत्सव मनाया। लौकिक व्याख्या करें तो यह कहना पर्याप्त है कि एक आकर्षण पैदा हो गया। ऐसा वातावरण बना कि सबका ध्यान नाभि और मरुदेवा की ओर हो गया।

यौगलिक युग की व्यवस्था थी कि शिशु जल्दी युवा बन जाता, चलने लग जाता। ऋषभ भी जल्दी चलने लग गये, बोलने लग गये। प्रश्न आया नामकरण संस्कार का। वैदिक परंपरा में सोलह संस्कार माने जाते हैं, उनमें एक नामकरण का संस्कार भी है। यौगलिक युग में उस समय तक कोई संस्कार नहीं था। नाम रखने की कोई विधिवत व्यवस्था नहीं थी, किंतु अब एक नया विकास हो रहा था। जो शिशु जन्मा, वह अतिशय ज्ञानी था। प्रथम कुलकर विमलवाहन को जाति स्मरण ज्ञान था। अब जो शिशु जन्मा है, उस शिशु के पास अतीन्द्रिय ज्ञान, अवधि ज्ञान है। यह नई घटना थी। यौगलिक युग में कोई युगल ऐसा नहीं था जो जन्मा हो और उसके पास अवधि ज्ञान हो। जन्म से अवधि ज्ञान या तो देवता को होता है या तीर्थंकर को। संभव है सद्यजात शिशु ने संकेत देना शुरू कर दिया कि कैसे होना चाहिए।

जब अतीन्द्रिय चेतना जागृत होती है, विचित्र घटनाएं घटित होती हैं। आज इसको तीसरा नेत्र कहते हैं। तीसरी आंख जागृत होती है। कुछ मास पहले हमारे पास एक भाई ने समाचार पत्र की कटिंग भेजी। गुजराती भाषा का था वह पत्र। उसमें रसिया के शिशु का एक चित्र छपा था। उस चित्र में उस शिशु के दो आंख के अतिरिक्त तीसरी आंख स्पष्ट दीख रही थी। माता-पिता ने सोचा कि यह तो कोई भद्दा चिह्न लग रहा है। उन्होंने आपरेशन

कराने की बात सोची पर नहीं हो सका। आखिर थोड़ा बड़ा हुआ, उसने बातें शुरू की। ऐसी बातें बताने लग गया कि उनको आश्चर्य हुआ। एक दिन माता और पिता यात्रा पर जा रहे थे। शिशु ने जिद्द पकड़ ली कि यात्रा पर नहीं जाने दूंगा। उन्होंने कहा—'हमारा रिजर्वेशन है। फिर टिकट कहां मिलेगी? हमें जाना है।'

उसने कहा—'कुछ भी हो जाये पर आज तो नहीं जाने दूंगा।' दूसरे दिन समाचार पत्र में पढ़ा—जिस ट्रेन में यात्रा करनी थी, जिस डब्बे में रिजर्वेशन था उसी की दुर्घटना हुई। जितने यात्री थे सब के सब मारे गये। उसके पश्चात उस शिशु ने ऐसी-ऐसी बातें बताईं, जिनकी कल्पना नहीं की जा सकती थी।

जिसके पास यह तीसरा नेत्र होता है, उसकी अतीन्द्रिय चेतना जागृत होती है। अवधिज्ञान उससे बहुत आगे की बात है। भगवान ऋषभ जन्मे, जन्म से ही उनके पास अवधिज्ञान था। ज्ञान के द्वारा परिवर्तन होता है। हम निश्चित मानें कि समाज में जो भी परिवर्तन होता है, वह ज्ञानी लोगों के द्वारा किया जाता है। जो अज्ञानी है, जानता नहीं है, वह क्या परिवर्तन करेगा? परिवर्तन के लिए पृष्ठभूमि में ज्ञान चाहिए। पहले ज्ञान, सोचने की शक्ति, उसके बाद आती है करने की शक्ति। पहले कल्पना, कल्पना के बाद क्रियान्विति। कल्पना ही नहीं है, सपना ही नहीं है तो आकार कौन लेगा? हमारी सृष्टि संकल्पजा है। उसके पीछे कल्पना है। कोई भी मकान बनाएगा तो पहले नक्शा बनेगा फिर मकान बनेगा। नक्शा बनाने वाला दूसरा होता है और मकान बनाने वाला अन्य होता है। जब हमारे मन में कोई नक्शा ही नहीं, कोई ज्ञान ही नहीं, कोई कल्पना ही नहीं तो आकार कौन लेगा?

सबसे पहले है कल्पना शक्ति का विकास। वही व्यक्ति सफल होता है, जिसकी कल्पना शक्ति अच्छी होती है, जो बहुत बड़ी कल्पना करना जानता है। जिसके पास अतीन्द्रिय ज्ञान होता है उसे कल्पना की अपेक्षा नहीं होती, उसके पास तो साक्षात शक्ति होती है। वह साक्षात देख लेता है, साक्षात चित्र सामने आ जाता है और वह उसकी व्याख्या कर देता है। भगवान ऋषभ में अवधिज्ञान की चेतना जाग्रत थी। वह अवधिज्ञान भी साधारण नहीं था। अवधिज्ञान साधारण भी होता है और विशिष्ट भी। तीर्थंकर का अवधिज्ञान विशिष्ट होता है। परिवर्तन के युग में ज्ञान का उदय हो रहा था। ज्ञान जितना विकसित होगा उतनी ही परिवर्तन की कल्पना की जा सकेगी।

सबसे पहले नामकरण की प्रथा का प्रश्न आया। अलौकिक भाषा में कहें तो यह मान लें कि देवताओं ने आकर सुझाव दिया होगा। लौकिक भाषा में मानें तो ऋषभ के पास ज्ञान था, उन्होंने संकेत किया होगा। सात दिन बीत गये। अब शिशु का नामकरण करना था। मरुदेवा, नाभि, और भी युगल मिले। प्रश्न उभरा कि क्या नाम रखा जाए? मरुदेवा का सुझाव रहा—पहला सपना कौन-सा आया? बैल का। इसकी छाती को देखो, इस पर भी ऋषभ अंकित है। आप किसी तीर्थंकर की प्रतिमा को देखें तो उसकी छाती पर एक विशेष प्रकार का चिह्न मिलेगा। विशिष्ट पुरुष की छाती पर कोई न कोई विशिष्ट चिह्न मिलेगा। ऋषभ के वक्षस्थल पर ऋषभ का चिह्न अंकित था। मां ने कहा कि नाम तो दिया हुआ है। इसका नाम होगा–ऋषभ। न राशि देखी, न किसी ज्योतिषी से पूछा। कोई ज्योतिषी नहीं था, कोई पंचांग नहीं था। नाम हो गया ऋषभ।

नामकरण के क्षण में, मरुदेवा का सक्षम तर्क रहा।
ऋषभ स्वप्न ऋषभांकित वक्षस्, ऋषभ नाम अवितर्क रहा।।
साधु साधु एक स्वर में कह, युगल सभी उल्लसित हुए।
ऋषभ नाम का संबोधन पा, किसलय तक उच्छ्वसित हुए।।

एक दूसरा प्रश्न था—कन्या का नाम क्या होगा? ऋषभ के साथ जो कन्या जन्मी है, उसके आते ही पूरे घर में मंगल वातावरण बन गया है। ऐसा लग रहा है कि एक साथ छलांग हो गई। डार्विन ने विकासक्रम की बात बतलाई, तो विकास की गति धीमी बतलाई। कभी-कभी गति में एक साथ परिवर्तन हो जाता है। एक छलांग लग रही है। सारे घर में मंगल वातावरण बन रहा है। इसका आना बड़ा मंगलकारी है, इसलिए कन्या का नाम सुमंगला रख दिया।

ऋषभ के पास विशिष्ट ज्ञान था। ज्ञान विकास के लिए बहुत आवश्यक है। दो तत्त्व हैं—ज्ञान और आचार। एक मत रहा—आचार प्रमुख है किंतु जैन दर्शन का यह मत नहीं रहा। आचार नंबर दो पर है। पहले सम्यक ज्ञान है। सम्यक दर्शन और सम्यक ज्ञान नहीं है तो आपका चरित्र अच्छा होगा ही नहीं। पहले ज्ञान और फिर आचार। ज्ञान के बिना आप समझेंगे ही नहीं कि क्या आचार होता है और क्या अनाचार? उसका बोध ही नहीं होता। बोध का कारण है हमारा ज्ञान। पहले ज्ञान होना चाहिए। कुछ लोग कहते हैं कि हमारी श्रद्धा बहुत अच्छी है। हमें ज्ञान की जरूरत ही नहीं है। श्रद्धा होना बहुत अच्छी बात है। उसमें बल भी है किंतु अगर ज्ञान हो तो श्रद्धा का बल हजार गुना बढ़ जाता है। ज्ञान न हो तो कभी-कभी फिसलन हो जाती है। टीले बहुत ऊंचे हैं, कभी तेज तूफान आता है तो मुंह इधर का उधर हो जाता है। यह फिसलन होती रहती है, इसलिए ज्ञान पृष्ठभूमि में होना चाहिए।

ऋषभ का नामकरण हो गया। इतना सुकुमार कहां पला? कल्पतरु की तो छांव है और शय्या है भूमि की। विश्राम करता है पिता की गोद में। और कोई झंझट नहीं। कैसा जीवन रहा होगा? आज एक सामान्य घर में सैकड़ों वस्तुएं मिल जाती हैं। घर भी मिल जाता है। ज्यादा नहीं तो दो-चार कमरे मिल जाते हैं। जिस ऋषभ की हम इतनी स्तुति करते हैं, प्रथम तीर्थंकर मानते हैं, आदिकर्ता मानते हैं, उनके रहने के लिए कोई मकान नहीं था। सोने के लिए कोई शय्या नहीं थी, बिछौना नहीं था और खाने को कोई विशिष्ट पदार्थ नहीं था। भूख लगी और अंगूठा मुंह में डाल लिया। भूख शांत।

इस संदर्भ में एक घटना आती है कि ऋषभ के लिए विशिष्ट व्यवस्था की गई। उत्तरकुरु से फल लाये गये। हमारी यह दुनिया भरत क्षेत्र की दुनिया है, जम्बूद्वीप की दुनिया है। एक क्षेत्र का नाम है उत्तरकुरु। वहां के फल बहुत बढ़िया होते हैं। इतने स्वादिष्ट, इतने मीठे और इतने बढ़िया फल। अगर भरत-क्षेत्र का आदमी उत्तरकुरु का फल खा ले तो उसे भरत-क्षेत्र के फल विरस लगेंगे। वह यह सोचेगा कि यह भी कोई आम होता है, यह कोई सेव अथवा अंगूर होता है, बिलकुल बेस्वाद है, कुछ भी नहीं है। उसे खाने के बाद दूसरी वस्तुएं खाने का मन नहीं करेगा। पर वे आये कैसे?

आज हमने एक सीमा बांध ली कि जो दुनिया है वह इतनी है। कितनी नीहारिकाएं, कितना विशाल आकाश। आकाश कितना बड़ा है, सामान्य आदमी सोच नहीं सकता। सैकड़ों-सैकड़ों प्रकाशवर्ष की दूरी पर सैकड़ों-सैकड़ों नीहारिकाएं हैं। कितना विशाल है सौरमंडल! कितनी विस्तीर्ण है आकाशगंगा! सैकड़ों-सैकड़ों प्रकाशवर्ष की दूरी पर अवस्थित हैं नीहारिकाएं और आकाश-गंगाएं। कितने सूरज, चांद और तारे हैं, कोई गिनती ही नहीं है। इतना विशाल है हमारा जगत। आदमी के पास ज्ञान थोड़ा है। आंख की शक्ति भी थोड़ी है। थोड़ा-सा पा लेता है तो इतना अहंकारी बन जाता है कि इतना मुझे मिल गया। सारी दुनिया के संदर्भ में देखें तो कहीं गिनती में ही नहीं आता।

हर आदमी यह चिंतन करे कि विश्व कितना विराट है, कितना विशाल है। न जाने कहां-कहां प्राणी हैं। आजकल वैज्ञानिक खोज तो रहे हैं कि हमारी पृथ्वी के सिवाय दूसरी जगह भी प्राणी मिल जायें, जीव मिल जायें और कहीं-कहीं पहुंच भी रहे हैं कि यहां प्राणी होना चाहिए। समाचार पत्र में पढ़ा—चन्द्रमा के आस-पास कुछ ग्रह ऐसे हैं, चन्द्रमा में भी कुछ ऐसे तत्त्व मिले हैं, जिनके आधार पर जीव होने की कल्पना की जा सकती है। पानी की कल्पना भी हो रही है। बर्फ भी मिल रही है। किंतु बहुत थोड़ी दूर तक अभी जा पा रहे हैं। इतना विशाल जगत है कि पता नहीं, कहां क्या मिल जाये।

महाविदेह की बात छोड़ दें, सीमन्धर स्वामी की बात छोड़ दें। उत्तरकुरु का वृत्त पढ़ें। वहां भी यौगलिक हैं किंतु वह भूमि इतनी ज्यादा बढ़िया है कि वहां की हर चीज विशिष्ट होती है। वस्तु में गुण का, रस का, शक्ति का, सबका अंतर होता है। उत्तरकुरु के फल बहुत बढ़िया फल होते हैं। वे फल अलौकिक शक्ति के द्वारा, दिव्य शक्तियों के द्वारा लाए जाते। ऋषभ को उनका भोजन कराया जाता। यह भी पहली घटना है। यौगलिक

युग में कहीं बाहर से कोई लाई हुई चीज पहले किसी ने नहीं खाई। वे जहां रहते, वहां कल्पवृक्ष होता और उसमें से जो मिलता वह खा लेते। ऋषभ के लिए विशिष्ट व्यवस्था की गई। अलौकिक शक्ति के द्वारा यह सब कुछ हो रहा था। अंगुष्ठ-पान और उत्तरकुरु से लाए हुए फल उनका भोजन बने।

ऋषभ बड़े हुए, चंचल बालक। बालक में चंचलता न हो तो वह मिट्टी जैसा बन जाता है। कुछ लोग कहते हैं कि बच्चा चंचल बहुत है। मैं पूछता हूं—क्या उसको अभी बूढ़ा बनाना चाहते हो? जब नई ऊर्जा, नई प्राण शक्ति है तो चंचलता तो होगी ही। छोटा बच्चा आता है और अपनी मुट्ठी बांध कर पट्ट पर ऐसी लगाता है कि जवान भी नहीं लगा सकता। उसमें तो नई ऊर्जा अब जाग रही है। वह स्थिर रहना नहीं चाहती। ऊर्जा ज्यादा होगी तो चंचलता भी होगी। ऋषभ में मन की चंचलता नहीं थी। शरीर की चंचलता है, ऊर्जा की चंचलता है। सबको बड़ा अच्छा लग रहा था।

एक और नया काम प्रारंभ हो रहा था। पहले युगल आपस में मिलकर खेलते नहीं थे। ऋषभ ने दूसरों के साथ क्रीड़ा करना भी शुरू कर दिया। क्रीड़ा क्या होती है, शायद पहले नहीं जानते थे। ऋषभ ने बच्चों को क्रीड़ा करना सिखा दिया। यह विश्रुत प्रसंग है कि भगवान महावीर ने आमलकी क्रीड़ा की। ऋषभ ने भी क्रीड़ा शुरू कर दी। एक बार क्रीड़ा कर रहे थे। एक बच्चे के मन में आया कि ऋषभ बहुत बातें करता है। अपने को सबसे ज्यादा शक्तिशाली मानता है। उसने ऋषभ की अंगुली पकड़ ली—देखता हूं कितनी ताकत है? ऋषभ ने देखा कि यह मेरी शक्ति की परीक्षा ले रहा है। कुछ नहीं किया। केवल थोड़ा झुककर दीर्घश्वास लिया। शायद भस्त्रिका प्राणायाम किया होगा। ऐसा श्वास लिया, सामने वाला बच्चा ऐसे उड़ा, जैसे तूफान में उड़ा हो।

एक नई शक्ति, नई ऊर्जा जाग रही थी। केवल बचपन के नहीं, युग के विकास की तैयारी हो रही थी। नए विकास की सारी कल्पनाएं हो रही थी।

ऋषभ का प्रथम जीवन बहुत लंबा नहीं था। चार महीने का जीवन बीता। युवा बन गये। शक्ति का पूरा स्फुरण हो गया। प्रत्येक अवयव पुष्ट हो गया। काम की भी क्षमता बढ़ी।

शैशव है केवल देहाश्रित, चिंतन में यौवन आया।
महापुरुष का चरित अलौकिक, होती है अद्भुत माया।।
प्रथम प्रहर का अतिक्रमण कर, सूर्य दुपहरी में आया।
पलक झपकते ही कलियों ने, पूर्ण पुष्प का पद पाया।।
महामहिम के अंग अंग पर, यौवन सहसा लहराया।
व्यक्त वृक्ष अव्यक्त बीज है, जीवन है तरु की छाया।।
युगल-काल है चिर यौवन का, शैशव की सीमा छोटी।
स्निग्ध काल के हाथों में है, द्रुत-संवर्धन की चोटी।।

एक प्रश्न है कि समाज कैसे बना? व्यवस्थाएं कैसे बनीं? हम लोग एक संस्कार के साथ चलते हैं। जिस व्यवस्था में जन्मे हैं वह संस्कार हमारा हो गया। वह ठीक लगता है। उस समय संस्कार कोई था ही नहीं। न सामाजिक संस्कार, न सामुदायिकता का संस्कार, न विवाह करने की विधि का संस्कार, न कोई उत्सव मनाने का संस्कार।

संस्कारों का निर्माण समाज के साथ-साथ होता है। समाज के साथ संस्कार बनते हैं और बिगड़ते हैं। अभी तक कोई संस्कार नहीं था। जब युवा अवस्था आई, ऋषभ विवाह योग्य बने। उस समय का यह सामान्य क्रम था—कोई विवाह नहीं होता था। विवाह की कोई प्रथा ही नहीं थी। बस युगल जन्मता, बड़ा होता और पति-पत्नी बन जाते। विवाह का नाम भी नहीं जानते थे। युग-परिवर्तन के साथ इस दिशा में कुछ नए पदचिह्न अंकित हो रहे थे। उनके अंकन का श्रेय नाभि को उपलब्ध हो रहा था। नाभि कुलकर व्यवस्था में आ रहे परिवर्तनों के साक्ष्य ही नहीं, कर्ता थे। उनका कर्तृत्व समाज व्यवस्था के लिए वरदान बन रहा था। विवाह प्रथा के शुभारंभ की कल्पना इस दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण प्रस्थान था। ❐

दुर्लभ त्रयी के संगम : आचार्य महाश्रमण

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

भारतवर्ष अध्यात्म-प्रधान देश है। इस देश की धरती पर अनेक महापुरुष अवतरित हुए हैं। महापुरुष कौन होता है? इस प्रश्न के समाधान में अनेक परिभाषाएं गढ़ी जा चुकी हैं और गढ़ी जा सकती हैं, क्योंकि चिंतन का वातायन जब खुलता है तो उससे छनकर आने वाली रोशनी में नए प्रतिमान रूपायित होते रहते हैं। उन प्रतिमानों पर विचार करते-करते दो बिंदुओं पर ध्यान केंद्रित हो रहा है–

महापुरुष वह होता है, जिसकी जीवन शैली आम आदमी से भिन्न प्रकार की होती है। महापुरुष वह होता है, जिसके आभामंडल का साक्षात्कार होते ही मन में सहज आश्वास और विपुल विश्वास जाग जाता है।

आचार्य महाश्रमण इक्कीसवीं सदी के तेरापंथ को नेतृत्व देने वाले अनुशास्ता हैं। प्रखर बौद्धिकता का युग और प्रबुद्ध साधु-साध्वियों का बड़ा समूह। उसे एक सूत्र में बांधकर रखना कोई सरल काम नहीं है। यह काम वही कर सकता है, जिसका चिंतन और जीवन कुछ विशिष्ट हो। विशिष्ट कुछ आम भी हो सकता है और खास भी हो सकता है।

तेरापंथ धर्मसंघ में उत्तराधिकार चयन की परंपरा आज के युग में अहंकार-ममकार विसर्जन की प्रेरणा है।

चलना, बैठना, सोना, बोलना, खाना, पीना आदि आम बातें हैं। आत्मानुशासन, इंद्रिय-निग्रह, कषाय-निग्रह, वाणी-संयम आदि खास बातें हैं। आचार्यश्री महाश्रमण ने दोनों दृष्टियों से अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है। प्रस्तुत प्रसंग में आचारांग सूत्र का एक सूक्त मननीय है–**अण्णहा णं पासए परिहरेज्जा**–अध्यात्म तत्त्वदर्शी वस्तुओं का परिभोग अन्यथा (अनासक्त भाव से) करे, अध्यात्म के तत्त्व को नहीं जानने वाला मनुष्य जैसे करता है, वैसे न करे। पश्यक/द्रष्टा वह होता है, जो आत्मतत्त्व और परमतत्त्व दोनों को जानता है। पश्यक का खाना-पीना मात्र देह-धारण के लिए होता है। वह उनमें आसक्त नहीं होता। अनासक्ति का दर्शन अध्यात्म का दर्शन है। अनासक्त चेतना का विकास होने के बाद पदार्थ के प्रति होने वाला ममत्व-भाव अपने आप कम हो जाता है या समाप्त हो जाता है। अध्यात्म के शिखर पर आरोहण करने के लिए अनासक्ति का सोपान के रूप में उपयोग हो सकता है।

आचार्य महाश्रमण की बाह्य एवं अंतरंग वृत्तियों और प्रवृत्तियों का निरीक्षण या विश्लेषण किया जाए तो स्पष्ट रूप में परिलक्षित होता है कि उनकी छोटी-से-छोटी प्रवृत्ति आम आदमी से विलक्षण तरीके से संपादित होती है।

अनिर्वचनीय व्यक्तित्व के धारक एक संस्कृत कवि ने विद्वान व्यक्ति की मन, वचन और काया की प्रवृत्ति को विलक्षण और अनिर्वचनीय निरूपित करते हुए लिखा है–

अन्या जगद्धितमयी मनसः प्रवृत्ति-
रन्यैव कापि रचना वचनावलीनाम्।
लोकोत्तरा च कृतिराकृतिरार्तहृद्या,
विद्यावतां सकलमेव गिरां दवीयः।।

विद्वान लोगों की मानसिक प्रवृत्ति जगत के हित-चिंतन में निरत रहती है, इसलिए वह साधारण लोगों से भिन्न प्रकार की होती है। मनःप्रवृत्ति की तरह उनकी वाणी भी भिन्न प्रकार की होती है। उनका कार्य/आचरण लौकिक व्यक्तियों की भांति नहीं होता, इसी दृष्टि से उसे लोकोत्तर माना जाता है। उनकी आकृति कष्टग्रस्त व्यक्तियों को आनंद देने वाली अथवा उन्हें सम्मोहित करने वाली होती है। अतः यह कहा जा सकता है कि विद्वान व्यक्तियों का सब-कुछ अनिर्वचनीय होता है।

आचार्य महाश्रमण विद्वान तो हैं ही, विद्वान होने के साथ-साथ अध्यात्म के महान साधक और एक विशाल धर्मसंघ के अनुशास्ता भी हैं। आचार्यश्री को निकटता से देखने-परखने वाले अच्छी तरह जानते हैं कि उनकी मनोवृत्ति कितनी उदात्त है, उनका वाणी-संयम कितना विलक्षण है और उनके कार्य कितने परोपकार-परायण हैं। उनके निकट पहुंचते ही दर्शक सम्मोहित हो जाते हैं, निर्निमेष उन्हें निहारते रहते हैं। इस स्थिति में उनकी मानसिक प्रवृत्ति, वाग्विन्यास और कार्यों की व्याख्या करना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। इस स्थिति में यही मानकर संतोष करना होगा कि आचार्यश्री का व्यक्तित्व अनिर्वचनीय है। शब्दों के द्वारा उसे व्याख्यायित नहीं किया जा सकता।

दुर्लभत्रयी संगम

आचार्यश्री महाश्रमण अनेक विशिष्ट गुणों के समवाय हैं। कुछ गुण नैसर्गिक हैं और कुछ गुण अर्जित भी हैं। अनेक गुणों को एक साथ देखकर संस्कृत का एक श्लोक स्मृति-पटल पर उभर कर सामने आ रहा है–

क्वचिद् भवेदाकृतिरेव सुंदरा,
न चापि सौभाग्यमभंगुरस्थिति।
क्वचित् पुनः स्थेयसि तत्र न ज्ञता,
विभाव्यते भाविनि! तत्र तत्त्रयम्।।

किसी व्यक्ति की आकृति सुंदर होती है, पर उसका सौभाग्य शाश्वत (दीर्घकालीन) नहीं होता। कहीं सौभाग्य स्थिर होता है, पर उसमें अभिज्ञता नहीं होती। किंतु राजकुमार अनन्तवीर्य के व्यक्तित्व में उक्त तीनों विशेषताएं युगपत परिलक्षित हो रही हैं।

राजकुमार अनन्तवीर्य इतिहास का पात्र है। वर्तमान में प्रस्तुत संदर्भ में विमर्श किया जाए तो आचार्यश्री महाश्रमण का व्यक्तित्व ऐसा है, जिसमें तीनों तत्त्व-सुंदर आकृति, अभंगुर सौभाग्य और विशिष्ट ज्ञान सहज रूप में समाहित है।

आचार्यश्री महाश्रमण बाह्य और अंतरंग दोनों प्रकार के व्यक्तित्व से संपन्न हैं। उनका बाह्य व्यक्तित्व उनकी आकृति पर अभिमंडित है। ललाट, आंखें, भौंहें, पलकें, कान, नासिका, ओष्ठपुट, चिबुक आदि अवयवों के योग से मनुष्य की आकृति बनती है। हर व्यक्ति के ये सब अवयव सुंदर ही हों, यह आवश्यक नहीं है, पर सर्वांग-सौंदर्य का वरण करने वाले व्यक्ति भी उपलब्ध हो जाते हैं। आचार्यश्री महाश्रमण की आकृति तो सुंदर है ही, उससे भी सुंदर है उनकी प्रकृति/स्वभाव। प्रकृति का सौंदर्य आकृति के सौंदर्य को शतगुणित कर देता है। इस अवधारणा की पुष्टि के लिए निदर्शन रूप में आचार्य महाश्रमण को प्रस्तुत किया जा सकता है।

आचार्यश्री महाश्रमण के जीवन में भाग्य और पौरुष का अद्भुत योग है। किशोर वय में वैराग्य का अंकुरण और संयमरत्न की उपलब्धि उनके सौभाग्य का सूचक है तो आचार्यश्री तुलसी और आचार्यश्री महाप्रज्ञ का सान्निध्य और कृपाभाव भी सौभाग्य के अभाव में मिलना मुश्किल है। तेरापंथ जैसे अनुशासित धर्मसंघ का नेतृत्व और लगभग आठ सौ शिष्य-शिष्याओं की संपदा भी भाग्य से ही मिल पाती है। इसी प्रकार अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान आदि जनोपयोगी व्यापक कार्यक्रमों को गतिशील बनाए रखना भी भाग्य की बात है।

भाग्य का निर्माता व्यक्ति का अपना पुरुषार्थ होता है। आचार्यश्री महाश्रमण पुरुषार्थ के पर्याय हैं। उन्होंने पुरुषार्थ की जो लौ प्रदीप्त की, उसे देखकर ही आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने उनके लिए महाश्रमिक और महातपस्वी जैसे संबोधनों का उपयोग किया। इसी कारण उनके प्रति जन-जन के अंत:करण में श्रद्धा का समंदर लहरा रहा है।

सुंदर व्यक्तित्व और स्थायी सौभाग्य के साथ-साथ आचार्यश्री की ज्ञानचेतना भी विशिष्ट रूप से जागृत है। आगम, न्याय, दर्शन, व्याकरण, काव्य, कोश आदि विविध विधाओं में निष्णात होकर वे प्रबुद्धवर्ग के लिए आकर्षण के केंद्र बने हुए हैं। आर्हत वाङ्मय के आधार पर होने वाले उनके दैनिक प्रवचन उनकी बहुश्रुतता के जीवंत साक्ष्य हैं।

अल्पकालीन शासनकाल में ही आचार्यश्री महाश्रमण ने अपनी जीवन-शैली, चिंतन-प्रणाली और कार्य-पद्धति से लोकमानस पर जो प्रभाव छोड़ा है, वह अनिर्वचनीय है। समय की रफ्तार अपनी गति के साथ आचार्यश्री के प्रभाव को व्यापक बनाती रहेगी, यह विज्ञापित करने की अपेक्षा नहीं है। समय स्वयं ही उनके वर्धमान वर्चस्व का साक्षी बनेगा, ऐसा विश्वास है। □

विनम्रता के शिखर पुरुष : आचार्य महाश्रमण

साध्वी विश्रुतविभा

महाभारत के युद्ध का प्रथम दिन था। युद्ध स्थल पर कौरवों और पांडवों की सेनाएं आमने सामने युद्ध के लिए सन्नद्ध थी। युद्ध प्रारंभ होने वाला था। इतने में ही युधिष्ठिर रथ से उतरकर कौरवों की सेना में प्रवेश कर गए। उन्होंने भीष्मपितामह, गुरु द्रोणाचार्य, कुलगुरु कृपाचार्य एवं अन्य गुरुजनों को प्रणाम कर आशीर्वाद लिया। यह दृश्य देखकर अर्जुन चिंतित हो गए। उसने श्रीकृष्ण से पूछा—भैया! यह क्या कर रहे हैं? इन्हें अभी शत्रुसेना के मध्य जाने की क्या जरूरत थी?

श्रीकृष्ण ने कहा–अर्जुन! गुरुजनों के प्रति विनम्र व्यवहार करके धर्मराज ने आधा महाभारत तो युद्ध के पूर्व ही जीत लिया समझो।

आचार्य महाश्रमण ने जैसे ही तेरापंथ धर्मसंघ के सर्वोच्च दायित्व की चादर ओढ़ी, सबसे पहले आपने दीक्षा-पर्याय में ज्येष्ठ मुनिवृंद को पट्ट से नीचे उतरकर वंदना की। हजारों-हजारों लोग इस दृश्य का अवलोकन कर अभिभूत हो गए। सबके हृदय बांसों उछलने लगे। कई लोगों के मुख से यह स्वर निकला–'धर्मसंघ के सर्वोच्च पद पर आसीन और इतनी विनम्रता!'

इसी दृश्य की पुनरावृत्ति हुई राजलदेसर मर्यादा महोत्सव के समय। बहिर्विहारी साधु-साध्वियों की ओर से जब आचार्य पदाभिषेक का द्वितीय चरण मनाया गया, उस समय भी अनेक साधु आपश्री से रत्नाधिक थे। आपने सबको विनत भावों से वंदना-बहुमान कर पुनः चतुर्विध धर्मसंघ की मंगलभावना को प्राप्त किया। ऐसा करके आचार्यवर ने सबके दिलोदिमाग पर अपनी पैठ जमा ली, क्योंकि वे जानते हैं कि विनम्रता वह सद्गुण है, जिससे व्यक्तित्व निखर और निथरकर असाधारण बन जाता है। सचमुच! आचार्य महाश्रमण विनम्रता के अपर पर्याय हैं। आप अपने विनम्र व्यवहार से बहुत जल्दी ही सबको आत्मीय बना लेते हैं।

उत्तराध्ययन सूत्र में विनीत शिष्य की पहचान बतलाई गई है–

मणोगयं वक्कगयं, जाणित्तायरियस्स उ।
तं परिगिज्झ वायाए, कम्मुणा उववायए।।

विनम्र शिष्य गुरु का चित्तानुप्रेक्षी होता है। वह गुरु के मनोगत भावों को त्वरता से जान लेता है। गुरु जो कहते हैं, उसे पूरा करने का प्रयत्न करता है। विनम्र शिष्य की पहली कसौटी है–**गुरु के अनुकूल वर्तन-व्यवहार करना।**

आचार्य महाश्रमण ने मुनि जीवन के प्रारंभकाल से ही गुरुदृष्टि की आराधना करने का सायास प्रयास किया। तदनुसार ही प्रत्येक कार्य को संपादित किया।

गुरु की जब-जहां-जैसी जो भी प्रेरणा मिलती, उस कार्य को उसी समय करने के लिए आप सन्नद्ध हो जाते हैं और जिस कार्य के लिए आपको कोई संकेत नहीं मिलता, उसे वहीं रोक देते। प्रस्तुत प्रसंग में मैं एक महत्त्वपूर्ण कार्य का उल्लेख करना चाहूंगी–

श्रद्धेय आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के सान्निध्य में यात्रापथ का निर्धारण प्रायः युवाचार्यश्री महाश्रमण ही करवाते थे। अधिकांश क्षेत्र के श्रावकों का आग्रह रहता कि आचार्यवर हमारे गांव अथवा शहर में पधारें। कभी-कभी कोई गांव पूर्व दिशा में होता तो कोई पश्चिम दिशा में और कभी-कभी क्षेत्रीय दूरी भी पथ निश्चय में बाधक बनती थी। स्थानीय लोग आचार्यवर को प्रार्थना करते। आचार्यवर प्रायः यही फरमाते–'महाश्रमण को सारी स्थिति बता दो। उनसे बात कर लो।' युवाचार्यश्री सब लोगों की बात को ध्यान से सुनते और वस्तुस्थिति का निवेदन करवा देते। प्रार्थना के बाद परमपूज्यश्री की जब-जहां-जैसे पधारने की मरजी होती, उसी अनुरूप युवाचार्यश्री सारा पथ निर्धारित करते, क्योंकि विनीत शिष्य सदैव गुरुदृष्टि को सर्वोपरि मानता है। शिरोधार्य करता है।

सुविनीत शिष्य की दूसरी कसौटी है–**गुरु के शब्दों को यथार्थ में परिणत करना।** गुरु और शिष्य का जीवन परस्पर एक-दूसरे से संपृक्त रहता है। गुरु शिष्य को आदेश-निर्देश देते हैं और शिष्य अपनी संपूर्ण शक्ति का उसी दिशा में नियोजन कर उसे क्रियान्विति की दहलीज पर पहुंचा देता है। लगता है, आचार्य महाश्रमण के सामने महाकवि कालिदास का यह सूक्त आदर्श रूप में रहा है–**आज्ञा गुरुणां ह्यविचारणीया**-गुरु आज्ञा अविचारणीय होती है। इसीलिए जब वे युवाचार्य थे, उस समय भी गुरु आज्ञा से प्रतिदिन व्याख्यान देना अपना कर्तव्य समझते थे। आचार्य महाप्रज्ञजी कई बार विनोद में फरमाते–'हम तो महाश्रमण का सहयोग करने के लिए प्रवचन-पंडाल में आ जाते हैं।' युवाचार्यश्री चतुर्मास के दौरान किन विषयों पर व्याख्यान देना है, इस संदर्भ में प्रायः आचार्यवर से मार्गदर्शन लेते। आचार्यवर की जो दृष्टि मिलती, उसी के अनुरूप व्याख्यान देना प्रारंभ कर देते। मेवाड़ यात्रा में आचार्यवर ने फरमाया–'अभी मेवाड़ में गोगुंदा के आस-पास के क्षेत्रों की यात्रा कर रहे हैं, यहां 'मगन चरित्र' का वाचन प्रासंगिक होगा।' बस निर्देश मिलने की देरी थी। युवाचार्यप्रवर ने 'मगन चरित्र' का वाचन प्रारंभ कर दिया। 'माणक-महिमा', 'तुलसी यशोविलास', 'संबोधि' आदि ग्रंथों के लिए जब-जब संकेत प्रदान किया, आपने उन्हें ही अपने प्रवचन (व्याख्यान) का विषय बना लिया। चतुर्मास के दौरान रात्रि में रामायण वाचन की दृष्टि मिलती तो बिना किसी ननुनच के रामायण शुरू कर देते। अपने आराध्य के मुखारविंद से निःसृत शब्दों को यथार्थ में परिणत करने के लिए महाश्रमण सदैव उद्यत रहते।

ठाणं सूत्र में विनय के सात प्रकारों की चर्चा की गई हैं। यथा–सत्तविहे विणए पण्णत्ते, तं जहा णाणविणए, दंसणविणए, चरित्तविणए, मणविणए, कायविणए, लोगोवयारविणए।

आचार्य महाश्रमण ज्ञानविनय, दर्शनविनय और चारित्रविनय के प्रति पूरे जागरूक हैं। वे अपनी मनोभूमि को निरंतर शुभयोग से ही भावित रखते हैं। हितभाषण, मितभाषण, अपरुषभाषण और अनुवीचि भाषण की साधना व वचन विनय की आराधना करते-करते आपश्री का कार्य विनय प्रशस्य और प्रणम्य बना हुआ है।

विनम्र शिष्य की तीसरी कसौटी है–**गुरु का सम्मान करना, बहुमान करना।** इसे लोकोपचार विनय भी कहा जा सकता है। यह विनय भी आपके जीवन का अभिन्न अंग बन चुका है। मैंने कई बार देखा–आचार्य महाप्रज्ञ के कक्ष से आपका कक्ष थोड़ी दूरी पर होता और प्रवचन-पंडाल आपश्री के कमरे के समीप होता तथा आचार्य महाप्रज्ञजी यदा-कदा फरमा भी देते कि अपने कक्ष से ही प्रवचन स्थल पर चले जाना, किंतु युवाचार्य महाश्रमण ने कभी भी इस सुविधा का उपयोग नहीं किया। उनका नित्यक्रम था–प्रवचन से पूर्व आचार्यवर को वंदना और आज्ञा लेकर प्रवचन पंडाल में पधारना।

आपश्री के प्रवचन के मध्य जब आचार्यवर प्रवचन पंडाल में पधारते अथवा प्रवचन के पश्चात्

अपने प्रवास-स्थान में आगमन होता, प्रायः युवाचार्यश्री आचार्यवर को हस्तावलंबन देने के लिए सन्नद्ध रहते।

विनम्र शिष्य की चौथी कसौटी है—**गुरु की सेवा करना**। आचार्य महाश्रमण जब युवाचार्य महाश्रमण थे, उस समय अपने आराध्य की तन-मन से जो सेवा की, वह वास्तव में श्लाघनीय है। उनके साथ वे सदा छाया बनकर रहे। प्रत्येक कार्य को आप दायित्व-बोध के साथ करते, जैसे—प्रवचन करना, घरों का स्पर्श करना, आगंतुक लोगों से वार्तालाप करना, उनकी प्रार्थनाओं को सुनना आदि-आदि।

उस समय भी युवाचार्यश्री का यह लक्ष्य रहता कि सामान्य कार्यों के संपादन में आचार्यवर की ऊर्जा न लगे। दिन में प्रवचनोपरांत आप प्रायः आचार्यवर के उपपात में पधारकर विमर्श-विचारणा का कार्य करवाते। कई बार आचार्यवर फरमाते-देखो, रात्रि में महाश्रमण मेरी वैयावृत्य करते हैं। महाश्रमण के हाथ मजबूत हैं। मैंने प्रार्थना की—आचार्यवर! युवाचार्यश्री दिन में अनेक बार अपने हाथ का सहारा आपश्री को देते हैं। गुरु सेवा करके निर्जरा करते हैं। उसके साथ-साथ उसका प्रासंगिक फल भी प्राप्त करते हैं। वह यह कि आपश्री के कर-कमलों से निःसृत ऊर्जा का युवाचार्यश्री में स्वतः ही संप्रेषण हो रहा है। इसीलिए युवाचार्यश्री के हाथ मजबूत है। आचार्यवर ने मुस्कुराते हुए फरमाया—हां, यह बात तो सही है।

विनम्र शिष्य की पांचवीं कसौटी है—**गुरु के अवशिष्ट कार्यों को पूर्ण करना**। आचार्य महाश्रमण इस बात के लिए संकल्पबद्ध हैं कि मुझे मेरे गुरु के अवशेष कार्यों को पूर्णता तक पहुंचाना है। तदनुसार उसकी क्रियान्विति प्रारंभ कर दी। सन् 2007 में आचार्य महाप्रज्ञ मेवाड़ में विचरण कर रहे थे। अकस्मात पूज्यवर के स्वास्थ्य में गिरावट आ गई। फलतः निर्धारित अहिंसा-यात्रा के क्रम को बदलना पड़ा। केलवा और जसोल के घोषित चतुर्मास करने से पूर्व ही पूज्यपाद जयपुर पधार गए तथा 100-150 कि.मी. की सीमा में परिभ्रमण करने का निर्णय ले लिया। तदनुसार यात्रा पथ का निर्धारण हो गया किंतु बीच में ही अप्रत्याशित घटना घटित हो गई। युवाचार्य महाश्रमण का जब आचार्य पदाभिषेक हुआ तब आपश्री ने सबसे पहले केलवा और जसोल का चतुर्मास घोषित किया। उसके बाद जहां-जहां जैसे-जैसे कार्यक्रम निर्धारित थे, उसको यथावत पूरा करने का संकल्प अभिव्यक्त किया। वर्तमान में आचार्य महाश्रमण के चरण चतुर्विध धर्मसंघ के साथ उसी दिशा में आगे बढ़ रहे हैं। वस्तुतः सुविनीत शिष्य ही अपने गुरु द्वारा उद्घोषित कार्यक्रमों को कुशलतापूर्वक अंजाम दे सकता है।

विनीत शिष्य ही गुरु-निर्देश का अनुपालन करता है। वह गुरु द्वारा प्रारंभ किए कार्यों को संपूर्ति तक पहुंचा सात्विक प्रसन्नता की अनुभूति कर सकता है। यह सच है कि विनम्रता की सरिता श्रद्धा और समर्पण रूपी तटों के मध्य होकर ही प्रवाहित होती है। जहां विनम्रता है, वहां श्रद्धा है, वहां समर्पण है। विनय, समर्पण और श्रद्धा रूपी सोपानों से ही व्यक्ति महानता के शिखरों का आरोहण कर सकता है। आचार्य महाश्रमण वस्तुतः श्रम, सेवा, संयम, समर्पण, विनय, श्रद्धा एवं सहजता जैसे सप्त एवं लोकप्रिय धातुओं के समवाय से निर्मित एक लोकप्रिय व्यक्तित्व है। यही वजह है कि आपने मुनि मुदित से महाश्रमण, महाश्रमण से युवाचार्य और युवाचार्य से आचार्य महाश्रमण तक का एक सुखद सफर तय कर लिया।

प्राकृत साहित्य में एक उल्लेख मिलता है कि व्यक्ति को विनय के द्वारा निराबाध सुख प्राप्त होता है—

विणया णाणं णाणाओ, दंसणं दंसणाओ चरणं च।
चरणाहिंतो मोक्खो, मोक्खे सोक्खं निराबाहं।।

विनय की आराधना से ज्ञान, ज्ञान से दर्शन, दर्शन से चारित्र और चारित्र से मोक्ष की प्राप्ति होती है तथा मोक्ष में निराबाध सुख उपलब्ध होता है।

आचार्य महाश्रमणजी के जीवन का प्रत्येक क्षण विनय धर्म की आराधना करता हुआ निराबाध सुख का अनुभव करते हुए प्रतीत हो रहा है। ❑

जीवट व्यक्तित्व : आचार्य महाश्रमण

साध्वीश्री सुमतिप्रभाजी

महानता का कोई निश्चित पैरामीटर नहीं होता। शेक्सपियर की मशहूर उक्ति है—कुछ व्यक्ति जन्मतः महान होते हैं, कुछ महानता हासिल कर लेते हैं तो कुछ पर महानता थोप दी जाती है।

युवामनीषी युवाचार्य महाश्रमण एक ऐसी शख्सीयत का नाम है जिन्होंने अपनी चिंतनशील, संकल्प-शक्ति और कर्म शक्ति के द्वारा महानता प्राप्त की है। बादशाह हसन से एक व्यक्ति ने पूछा—महाशय! आपके पास न तो धन था और न सेना। फिर आप सम्राट कैसे बन गए? बादशाह हसन ने कहा—'भैया! मित्रों के प्रति सच्चा प्रेम, शत्रु के प्रति उदारता और प्रत्येक प्राणी के प्रति सद्भाव ही महानता के सोपान हैं। जिससे व्यक्ति बादशाह ही नहीं, विश्व सम्राट भी बन सकता है। युवाचार्य महाश्रमण उदारता, असंकीर्ण विचार और विशाल हृदय के लाखों दिलों के सम्राट बने हुए हैं। उनके भीतर करुणा का महासागर मानो पूर्णिमा के दिन आंदोलित होकर अपनी मर्यादा को लांघ रहा है। उनका कथन है—'मूल मृदुता, करुणा ही है, कठोरता तो कभी-कभी करनी पड़ती है। निस्संदेह ऐसे व्यक्तित्व ही आदर्श बन सकते हैं, जो स्वार्थ और सुविधा को पीठ दिखाकर एवं कठिनाइयों को धैर्य से सहकर कर्तव्य से विमुख नहीं होते। जो व्यक्ति अपने कर्तव्य के प्रति प्रतिक्षण जागरूक रहता है, वह हर क्षेत्र में सफल होता है।

असाधारण व्यक्तित्व के धनी युवाचार्य महाश्रमण का जन्म विक्रम संवत 2019, वैशाख शुक्ला नवमी (13 मई 1962) को तेरापंथ की राजधानी सरदारशहर में हुआ। बालक का नाम मोहनलाल रखा गया। पिता स्वर्गीय श्री झूमरमलजी दूगड़ शांत, सरल और ईमानदार व्यक्ति थे। माता स्वर्गीय श्रीमती नेमादेवी दूगड़ विवेक संपन्न, व्यवहार कुशल और समझदार महिला थी। छह भाई और दो बहिनों में बालक मोहन का सातवां स्थान है। मोहन बचपन में बहुत चंचल था। वह अध्ययन में होशियार था तो भाई-भतीजों के साथ लड़ने-झगड़ने में भी कम नहीं था। मां व्याख्यान सुनकर आती तब तक तो शिकायतों का अंबार-सा लग जाता। एक दिन मां ने परेशान होकर कहा—'मोहन! तुम मेरे साथ व्याख्यान सुनने चला करो।' मोहन चंचल तो था, पर आज्ञाकारी भी था। वह मां के साथ साधुओं के स्थान पर जाने लगा। धीरे-धीरे घर का आकर्षण कम होने लगा और संतों के प्रति आकर्षण बढ़ने लगा।

वि. सं. 2030-31 का चतुर्मास सुमेरमलजी स्वामी (लाडनूं) का सरदारशहर में हुआ। मुनिश्री का प्रवास मोहन के लिए वरदान बन गया। वि. सं. 2030 भाद्रपद शुक्ला छठ के दिन ग्यारह वर्षीय बालक मोहन ने मुनिश्री सुमेरमलजी स्वामी के निर्देशानुसार अष्टमाचार्य पूज्य कालूगणी की माला फेरकर चिंतनपूर्वक यह निर्णय किया कि मुझे 'साधु' बनना है। वि. सं. 2031 वैशाख शुक्ला चतुर्दशी (5 मई 1964) को सरदारशहर में मुनिश्री सुमेरमलजी स्वामी

(लाडनूं) के कर कमलों से बालक मोहन का दीक्षा संस्कार संपन्न हुआ। वेश परिवर्तन के साथ नाम भी परिवर्तित हो गया। बालक मोहन की मुनि जीवन की पहचान मुनि मुदित के रूप में होने लगी।

संयम पर्याय के साथ ही मुनि मुदितकुमारजी की जीवन शैली बदल गई। पांच महाव्रत, पांच समिति और तीन गुप्ति–इन तेरह नियमों की अनुपालना में वे सतत जागरूक रहने लगे। तभी तो गुरुदेव तुलसी ने एक बार कहा था–'महाश्रमण बहुत भला है, बहुत विनीत है। इसे कुछ भी कह दो। यह इतना सरल है कि कुछ कहा नहीं जा सकता। मैं कहता हूं कि 'साधु हो तो ऐसा हो।' वस्तुतः युवाचार्य प्रवर की हर क्रिया में समता झलकती है।

- वि. सं. 2042 माघ शुक्ला सप्तमी (16 फरवरी, 1986) को उदयपुर में गुरुदेव तुलसी ने उन्हें युवाचार्य महाप्रज्ञ के अंतरंग सहयोगी के रूप में नियुक्त किया।
- वि. सं. 2043 वैशाख शुक्ला चतुर्थी (13 मई, 1986) को ब्यावर में 'साझपति' (ग्रुपलीडर) बनाया।
- वि. सं. 2046 भाद्रपद शुक्ला नवमी (9 सितंबर, 1989) को लाडनूं में उन्हें 'महाश्रमण' के पद पर नियुक्त किया।

निरंतर गतिशीलता और लयबद्धता के साथ चरण विकास के पथ पर बढ़ते रहे।

अध्यात्मनिष्ठा, आचारनिष्ठा, साधना, शिक्षा, सेवा, विनम्रता, अनुशासन, संघनिष्ठा, गंभीरता आदि विशेषताओं को ध्यान में रखकर विक्रम संवत 2054 भाद्रपद शुक्ला द्वादशी (14 सितंबर 1997) को आचार्य महाप्रज्ञ ने गंगाशहर में उनको अपने उत्तराधिकारी के रूप में नियुक्त किया। तब से युवाचार्य महाश्रमण और बाद में आचार्य महाश्रमण के रूप में उनकी पहचान बन गई।

आचार्यश्री ऊर्जस्वल व्यक्तित्व के धनी हैं। जिस व्यक्ति के संयम पर्यव जितने उज्ज्वल होते हैं, वह उतना ही आकर्षक और आदरास्पद बनता है। आचार्य-प्रवर का आभामंडल इतना प्रभावशाली है कि उनकी सन्निधि मात्र ही वीतरागता का संकल्प पैदा करती है।

मुनि जीवन का पर्याय है–सहनशीलता। यदि साधुत्व को स्वीकार करने के बाद भी समता नहीं है, धैर्य नहीं है, सहिष्णुता नहीं है तो साधना की निष्पत्ति पर प्रश्नचिह्न लग सकता है। साधु जीवन में सहिष्णुता के परीक्षण में जो सफल हो जाता है वह वीतरागता की ओर प्रस्थित हो जाता है। बहुधा ऐसा देखा जाता है कि सहन करने में शरीर बल की अपेक्षा मनोबल ज्यादा सहयोग देता है। यदि मनोबल प्रबल है, आस्था पुष्ट है तो भयंकर कष्ट को भी प्रसन्नता से सहा जा सकता है अन्यथा उसके लिए सामान्य कष्ट को सहन करना भी कठिन हो जाता है। सहिष्णुता साधना की कसौटी है। गुरुदेव तुलसी ने लिखा–'मेरे अभिमत से दो प्रकार के व्यक्ति सहन करते हैं–

(1) जिसमें बोलने की क्षमता नहीं होती,

(2) जिसका विवेक जाग्रत होता है।

युवाचार्य महाश्रमणजी का विवेक जाग्रत है। बोलने की क्षमता होने पर भी वे सहन करना बहुत अच्छी तरह जानते हैं। प्रतिकार की शक्ति होने पर भी विरोधी परिस्थितियों और विचारों को सहना

जानते हैं। सहिष्णु व्यक्ति में संघर्ष झेलने की क्षमता होती है। जो सहना जानता है वह शांति पूर्ण जीवन जी सकता है। वास्तव में जो सहना जानता है वही जीवंत जीवन जीता है। सहनशीलता का संबंध शरीर, वाणी और मन के साथ है।

ऐसा लगता है कि आचार्य प्रवर ने अपने शरीर, वाणी और मन को साध लिया है। शारीरिक सहिष्णुता को बढ़ाने के लिए वे प्रयोग करते रहते हैं। दीक्षा ग्रहण के कुछ समय पश्चात ही आप गर्मी के मौसम में भीतर शयन करते, सर्दी के मौसम में ठंडे स्थान में सोने का प्रयास करते। यह प्रयोग आप बीच-बीच में लंबे समय तक करते रहे। वर्तमान में हम स्वयं देखते हैं कि 50 डिग्री तापमान होने पर भी उनके इर्द-गिर्द कोई पंखा भी नहीं चलता। पसीने से शरीर तर-बतर हो जाता है, किंतु उनका मन कभी बेचैन नहीं होता। मौसमजनित या अन्य किसी भी प्रकार की प्रतिकूल परिस्थिति आने पर वे उसे सहजता और प्रसन्नता के साथ सहन कर लेते हैं।

आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने 9 फरवरी, 2006 को धूरी (पंजाब) से प्रस्थान करने से पूर्व कहा–'कष्ट सहने में महाश्रमण प्रथम व्यक्ति है। घरों आदि में जाना पड़ता है, पर ये विवशता से नहीं, उल्लास-पूर्वक और दायित्व समझकर जाते हैं। इस प्रकार कोई दूसरा व्यक्ति नहीं जा सकता। महाश्रमण कह सकते थे कि आज विहार है, घरों में नहीं जा सकता किंतु 'संजमम्मि य वीरियं' संयम से पराक्रम करते हैं। इससे इनका भाग्य बढ़ रहा है।'

15 जून, 2006 को हिसार में आचार्य-प्रवर ने फरमाया–'हमारा और महाश्रमण का एक बात में एकमत नहीं है। अन्य सब बातों में हमारा सवा सौ प्रतिशत एकमत है। ये कठोर श्रम अधिक करते हैं। कल गुरुदेव तुलसी की दसवीं वार्षिकी थी, इनके उपवास था। फिर भी सुबह कार्यक्रम में चार घंटे बैठे। रात्रि कार्यक्रम में फिर दो घंटे बैठे और उसके बाद भी काम किया। इस एक बात में या तो ये (महाश्रमण) हमारी मान लें या फिर हम इनकी मान लें।

17 सितम्बर, 2007 को उदयपुर चतुर्मास में खमतखामणा के दिन श्रद्धेय आचार्यप्रवर ने कहा–'इनके जैसा युवाचार्य तेरापंथ में होना एक दुर्लभ भाग्य की बात है। महाश्रमण महाश्रमिक हैं। इसके साथ एक बात और कहना चाहता हूं कि हमारे धर्मसंघ में अठाई, मासखमण जैसी बड़ी तपस्या करने वाले तो हैं, लेकिन मैंने महाश्रमण जैसा तपस्वी आज तक नहीं देखा। इतनी सहनशीलता, इतना श्रम! अंतरंग तप का मूल्यांकन करें तो इतना बड़ा तपस्वी मुझे आज तक धर्मसंघ में दिखाई नहीं दिया। इसलिए आज से लोग युवामनीषी ही नहीं महातपस्वी महाश्रमण कहें। सचमुच! मैं प्रशस्ति नहीं कर रहा हूं। इनका महाताप हमारे धर्मसंघ के लिए गौरव का और मेरे लिए तो परम आनंद का विषय है।'

25 अप्रैल 2007 को रावलिया में युवाचार्य प्रवर के 46वें जन्म दिवस के उपलक्ष्य में आचार्यप्रवर ने एक दोहा कहा–

जाग्रत वर वैराग्य है, जाग्रत प्रवर विवेक।
शासन का सौभाग्य है, हैं लाखों में एक।।

महातपस्वी महाश्रमणजी के मनोनयन दिवस के उपलक्ष्य में यह मंगल कामना करते हैं कि आप वीतरागता के पथ पर सतत आरोहण करते हुए संघ को भी इस दिशा में गतिमान करें। ❐

श्रम के पर्याय : आचार्य महाश्रमण

सूरजकरण दूगड़

आदमी के जीवन में श्रम का महनीय स्थान है और श्रम कभी निष्फल नहीं जाता। आचार्यश्री महाश्रमणजी इस 'श्रम' शब्द को निरंतर सार्थक कर रहे हैं। श्रम से जो चीज मिलती है वह टिकाऊ होती है। आचार्यप्रवर जब बाल्यावस्था में थे, तब बहुत जल्दी-जल्दी बोलते थे, उच्चारण भी अस्पष्ट था। मेरे पिताजी स्व. श्री झूमरमलजी दूगड़ तो बहुधा मेरी मां से कहा करते थे कि मोहन के साथ कुछ मत कहलवाया करो। यह क्या बोलता है, मुझे कुछ भी पता नहीं चलता।

मोहन मां के साथ व्याख्यान सुनने जाता। व्याख्यान सुनकर जब वापस घर आता, तब मां से कहता–मां! आज जो व्याख्यान सुनकर आया हूं, वह मैं आपको वापस सुनाऊं? मां कहती–मैं तो स्वयं सुनकर आई हूं, मुझे नहीं सुनना। फिर मोहन बूआजी के पास जाता वे भी सुनने के लिए मना कर देती। इस ना के पीछे कारण एक ही था कि मोहन की आवाज साफ नहीं थी। वह क्या बोल रहा है, स्पष्ट सुनाई नहीं देता था।

आज वही मोहन आचार्य महाश्रमण के रूप में हम सबके सामने विराजमान है। उनके मुखारविंद से निकलने वाले एक-एक अक्षर को सुनने के लिए लोग लालायित रहते हैं। यदि किसी व्यक्ति के बारे में वे दो शब्द भी बोल देते हैं तो वह व्यक्ति धन्यता का अनुभव करता है और ताजिंदगी उन शब्दों को अपने स्मृति प्रकोष्ठ में सहेजकर रखता है।

मुझे लगता है, आचार्यप्रवर ने अपने उच्चारण को ठीक करने के लिए बहुत श्रम किया होगा, दृढ़ संकल्प किया होगा। उसी श्रम का यह फल है कि आज उनका उच्चारण बहुत स्पष्ट है। उनके द्वारा कहा गया एक-एक शब्द सबको समझ में आता है। वे शब्दों का चयन गजब का करते हैं। उनकी भाषा इतनी स्पष्ट, शुद्ध, मधुर और संतुलित है कि लोग सुनने के लिए हर समय उत्कर्ण रहते हैं। उनका प्रवचन इतना सरल, सरस और जीवनोपयोगी होता है कि सुनने वाले अनेक लोग अपने जीवन में परिवर्तन महसूस कर रहे हैं। हजारों लोग इनकी प्रवचन शैली के कायल हैं। यह इनके पुरुषार्थ का ही फल है।

मैं आचार्यश्री महाश्रमणजी का संसार-पक्षीय अग्रज होने के नाते उन्हें कहना चाहता हूं कि वे खूब श्रम करें, किंतु साथ में विश्राम को भी महत्त्व दें। पट्टोत्सव के अवसर पर इनके प्रति यह मंगलकामना करता हूं कि वे अपनी सोच और श्रम से संघ को हिमालयी ऊंचाइयां प्रदान करें। ❑

मैं और मेरा भाई

श्रीचन्द दूगड़

मैं आचार्यश्री महाश्रमणजी का संसार-पक्षीय अनुज हूं। हम लोग छह भाई थे। बचपन में जब कोई व्यक्ति मुझसे यह पूछता कि तुम कितने भाई हो तो मैं यह नहीं कहता कि हम छह भाई हैं, मैं कहता—हम आधा दर्जन भाई हैं। जब भाई मोहन की दीक्षा लेने की भावना हुई, तब मुझे बहुत अटपटा लगा। उस समय अटपटा लगने के मात्र दो ही कारण थे। पहला कारण था कि हम साथ खेलने वाले भाई-भतीजों में एक भाई कम होने वाला है और दूसरा कारण था कि आधा दर्जन की संख्या भी खंडित होने वाली है। मेरे उस छोटे-से दिमाग में उस समय यह बात नहीं आई कि भाई मोहन हमारे भाइयों की संख्या को खंडित करने नहीं, बल्कि पूरे कुल को महिमा-मंडित करने जा रहा है। सचमुच! भाई मोहन की दीक्षा से हमारा पूरा परिवार ही नहीं, बल्कि सरदारशहर का संपूर्ण तेरापंथी समाज गौरवान्वित हुआ है।

बचपन में मैं बहुत शरारती था। घर में जब हम झगड़ा करते, तब कई बार मां हमें पकड़ने के लिए आती। मां को अपनी ओर आते देखकर मैं तो तत्काल घर से बाहर दौड़ जाता और भाई मोहन मां के हाथों पकड़ा जाता। कई बार तो उनकी पिटाई भी हो जाती। वे उस वक्त न रोते-चिल्लाते, अपितु मां से कहते—मां! आपके ही हाथों में लगेगी। यह सुनते ही मां के हाथ वहीं रुक जाते।

- उस समय कौन जानता था कि हमारे साथ लड़ने वाला मोहन एक दिन हमारा नाथ बनेगा।
- उस समय कौन जानता था कि मां और भाईजी के अनुशासन में रहने वाला भाई मोहन हजारों लोगों पर अनुशासन करेगा।
- उस समय कौन जानता था कि नन्हे-नन्हे कदमों से दौड़ने वाले मेरे भाई मोहन का चरण स्पर्श करने के लिए हजारों लोग लालायित रहेंगे।
- उस समय कौन जानता था कि एक ही डांट पर मौन रहने वाले मेरे भाई मोहन की वाणी लाखों लोगों को अमृत-रस का पान कराएगी।
- उस समय कौन जानता था कि हर पल हमारे साथ, हाथ से हाथ मिलाकर चलने वाले मेरे भाई मोहन के हाथ आशीर्वाद की मुद्रा में उठकर संतप्त लोगों का संताप दूर करेंगे।
- उस समय कौन जानता था कि कभी-कभी कान खिंचाई कराने वाले मेरे भाई मोहन के कान लोगों के सुख-दुःख को सुनकर उन्हें आत्मतोष प्रदान करेंगे।
- उस समय कौन जानता था कि मनमोहक आंखों वाले मेरे भाई मोहन की दृष्टि अनेकों की भाग्यलिपि बन जाएगी।
- उस समय कौन जानता था कि एलबम के किसी कोने में दिखने वाली मेरे भाई मोहन की तसवीर एक दिन लाखों लोगों के दिलों की धड़कन बन जाएगी।
- आज मैं अपने भाई (आचार्यश्री महाश्रमण) को देखता हूं तो मेरा सीना गौरव से फूल जाता है, मस्तक श्रद्धा से झुक जाता है और जिह्वा बार-बार यह कहने के लिए आतुर हो उठती है कि उस छोटे-से दिमाग ने इतने लंबे भविष्य के लिए कितना सुंदर निर्णय लिया था।
- मैं परमपूज्य आचार्यश्री महाश्रमणजी के प्रति यह मंगलकामना करता हूं कि आप स्वस्थ रहें। दीर्घायुता प्राप्त करें।

मुझे गर्व है

शिक्षक रेवतमल भाटी

तप, संयम, सहिष्णुता और सहकार वाला बालक मोहन दूगड़ किशोर अवस्था में श्री राजेन्द्र विद्यालय की अपनी छठी कक्षा की अर्द्धवार्षिक परीक्षा को छोड़कर तपस्वी मुनि बनेगा इसकी कल्पना कौन कर सकता है। फिर भी ऐसा हो गया। विद्यालय का प्रधानाध्यापक होने के कारण उसकी अनुपस्थिति सहन नहीं कर सका, दौड़ पड़ा उसके घर की ओर। मां नेमादेवी ने बताया, गुरुजी! वह तो साधपणा लेगा। साधों के ठिकाने में है। मैं साधों के ठिकाने पहुंच गया। मुनि सुमेरमलजी से मिला। विधिवत वंदना कर बोला–मुनिवर! मोहन दूगड़ व उत्तम बैद विद्यालय के होनहार विद्यार्थी हैं उन्हें आप ले आए। उनकी पढ़ाई भी पूरी नहीं हुई। ये देश के उत्तम नागरिक बनने वाले हैं। मुनिजी बोले, इसीलिए तो मैं ले आया हूं। इनको सद्गुरु निश्राय में सौंपकर इन्हें अपने उन्नत जीवन निर्माण की ओर प्रेरित करेंगे। भारी मन से लौट आया।

इनके विद्यार्थी जीवन की घटनाएं रह-रहकर सामने आने लगी। जिस दिन मोहन अपने भाइयों के साथ विद्यालय आया, चरण स्पर्श किये, मुसकराते हुए चेहरे को देखकर बरबस मैंने गोद में उठा लिया। जब तक विद्यालय में रहा अनेक बार मैं उसकी पढ़ाई की प्रगति जानने के लिए कक्षा में जाता रहता। एक दिन की घटना है, कक्षा 3 में मुझे छात्रों की योग्यता की जांच करनी थी। जब मोहन की बारी आयी और उसे प्रश्न पूछने लगा तो सब बालक एक साथ बोल उठे–गुरुजी! मोहन को तो सारी पुस्तकें कंठस्थ याद हैं। ये सुनकर मुझे स्वामी विवेकानन्द का स्मरण हो आया कि वे जिस पुस्तक को पढ़ते उन्हें याद हो जाती थी। एक-एक कर उसकी कक्षा के विषयों के अलग-अलग पाठ मैंने सुने, उसने सारे पाठ सुना दिए। यह उसकी प्रखर बुद्धि और स्मृति का अनोखा उदाहरण है। मैं विद्यालय प्रवेश के बाद एक दिन विद्यार्थियों को प्रार्थना सभा में उद्बोधन देता कि आप जैसा आप की मां ने एक ही सपूत जन्मा है ऐसा दूसरा कोई दुनिया में खोजने पर भी नहीं मिलेगा। आप गुलाब की तरह इस दुनिया में अपनी खुशबू फैलाएं ओर नेक बनें। एक और नेक बनकर लोकहितार्थ श्रेष्ठ सिद्ध हों। यह बात मोहन के मन-मस्तिष्क में अमिट अंकित हो गयी। अब वह मोहन नहीं मुनि मुदित हो गए।

मुनि मुदित ने तेरापंथ धर्मसंघ में अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य तुलसी का, आचांर्यश्री महाप्रज्ञ का सतत सान्निध्य प्राप्त कर मुनि जीवन की चर्या को अपना आधार बनाकर अध्ययन की सर्वोच्चता हासिल की। आचरण की सरलता के पथ अनुगामी बने, और पंच महाव्रतों का कठोरता से पालन कर अपने वैभवशाली जीवन को उच्चता प्रदान की।

ऐसा ही हुआ, वे मुदित से महाश्रमण हो गये और महाश्रमण से युवाचार्य। विद्यालय में युवाचार्यश्री महाश्रमण पधारे। वहां पहुंचकर उन्होंने अपने विद्यार्थी जीवन के सारे संस्मरण श्रोताओं को सुनाए–तीसरी कक्षा में रिछपालजी ने मुझे कक्षा का मानिटर बनाया। मैं सदा स्कूल में प्रथम अंक लेकर परीक्षा पास करता था। कभी भी 80% से कम अंक मुझे नहीं मिले। दोपहर की छुट्टी में हनुमानजी चपरासी घंटी

बजाते तो मैं सबसे पहले कक्षा में दौड़कर प्रवेश करता। मेरी पढ़ाई का एक मात्र स्कूल है श्री राजेन्द्र विद्यालय।

आचार्य महाप्रज्ञ सरदारशहर प्रवास के लिए पधारे। पहला पड़ाव मंगलचन्द भंवरलाल की हवेली पर था। आपने फरमाया मैं महाश्रमण के चतुर्मास के लिए यहां आया हूं। प्रवचन के बीच में किसी का ध्यान इस ओर नहीं गया। वहां से साधों के ठिकाने पधार गये। एक दिन आचार्यप्रवर, युवाचार्यश्री प्रवचन के बाद गोठीजी की हवेली में विराज रहे थे। मैं वहां वंदना करने गया। दर्शन कर वंदना की, चरण स्पर्श किया। आचार्य महाप्रज्ञजी ने युवाचार्यजी से कहा—भाटी जी हमारे बहुत पुराने पहले कार्यकर्ता हैं। ये शब्द सुनकर मैं भाव विभोर हो उठा। यह मेरी अंतिम वंदना थी। आप मोक्षगामी हो गये। सूचना पाकर पूरे भारत ही नहीं विश्व में शोक की लहर छा गयी। लाखों-लाखों लोग दर्शन के लिए उमड़ पड़े। सायंकाल मैं दर्शन के लिए युवाचार्यश्री के पास पहुंचा। वहां मेरा एक विद्यार्थी संपतमल बच्छावत मुझे देखकर मेरे पास आया। प्रणाम कर बोला—गुरुजी, आचार्यश्री महाप्रज्ञ की समाधि के लिए श्री पन्नालाल बच्छावत राज घराना परिवार से सवा छः बीघा जमीन और सवा छः करोड़ रुपये की राशि स्वीकृति पर महासभा ने अनुमति प्रदान कर दी है। मेरे मुंह से निकल पड़ा—**मायड़ ऐड़ा पूत जण के दाता के संत।**

आचार्य पद ग्रहण कर वे सरदारशहर के घर-घर में दर्शन देने पधारे। मेरे घर भी तीन बार पधारे। मैंने उनको सन् 1972 का आचार्यश्री तुलसी का लिखा हुआ पत्र पढ़ाया, आपने उस पत्र को तेरापंथ भवन प्रवचन सभागार में पढ़कर सुनाया। अड़तीस वर्ष पुराने पत्र को सुनकर श्रोतागण ने ओम अर्हम् की ध्वनि से गुंजायित कर दिया। 26 अक्टूबर को आचार्यश्री महाश्रमणजी ने उद्घोषणा की—मैं श्री रेवतमल भाटीजी को अणुव्रत सेवी अलंकरण प्रदान करता हूं। यह अलंकरण अणुव्रत महासमिति द्वारा 31 जुलाई 2011 को आचार्यश्री महाश्रमणजी के केलवा चातुर्मासिक प्रवास में प्रदान किया गया। ऐसे तपस्वी, मनस्वी व त्यागमूर्ति आचार्यों की कृपा को वरण कर मैं कृत-कृत्य हूं।

शिक्षक : भंवरलाल शर्मा

संसार में अनेक मनुष्य जन्म लेते हैं। जिनमें प्राकृतिक गुण होते हैं वे ही आगे चलकर महान पुरुष बनते हैं। ये प्रकृति आधारित गुण विरले मनुष्यों में ही होते हैं। ये गुण हैं—कुशाग्र बुद्धि, सत्य, प्रेम, सहयोग, करुणा, दृढ़ इच्छाशक्ति। ये गुण हैं हमारे महाश्रमणजी में। इन गुणों का बीजारोपण बचपन में ही शुरू होता है। महाश्रमणजी के बचपन का नाम मोहनलाल था। छोटी-सी काया थी। लेकिन बुद्धि कुशाग्र थी। जो पाठ कक्षा में पढ़ाया जाता, उसका हूबहू वर्णन कर देना, जो प्रश्नों के उत्तर बताए जाते उनका जवाब उसी भाषा में बता देना, हर विषय को तुरंत समझना कुशाग्र बुद्धि का लक्षण है।

कक्षा में कुछ बच्चे जो गृह कार्य के प्रति उदासीन होते हैं, उनकी आदत सुधार के लिए कुछ कड़ाई करनी पड़ती है। एक बार ऐसे बच्चों को बेंच पर सीधे हाथ खड़े कर कड़ाई की थी। कुछ समय व्यतीत होने पर आपने कहा—गुरुजी! इनके बदले मैं खड़ा हो जाता हूं। आप इन्हें क्षमा कर दें। मैं दोपहर की छुट्टी में कार्य पूरा करवा दूंगा।

इसी तरह एक बार दो बालक आपस में गुत्थम-गुत्था होकर लड़ रहे थे। उनको अलग किया। फिर समझाकर हाथ मिलवाया, दोनों हंसने लगे। जब कभी गृहकार्य नहीं किया तो असत्य का सहारा नहीं लिया। साफ कहा—कार्य करने का मन नहीं हुआ। बाल सभा में कविता, कहानियां कहकर बच्चों को बताते कि हमें इससे यह शिक्षा मिलती है। प्रेम का पैगाम बच्चों को देते। आज पूरी दुनिया को प्रेम, अहिंसा का पैगाम दे रहे हैं। मैं गर्व करता हूं और मेरी यह सद्कामना है कि आप दिन-प्रतिदिन प्रगति मार्ग पर अग्रसर होते रहें।

विकास की उड़ान : निर्माण का आह्वान

दीक्षा गुरु : मुनिश्री सुमेरमलजी

अध्यात्म की तेजस्विता बाहर से नहीं भीतर से प्रकट होती हैं। सुविधा भोग से नहीं, त्याग से प्रकट होती है, तपस्या से प्रकट होती है। अंतर की यात्रा करने वाला ही इसका रहस्य जान पाता है। सूक्ष्म जगत से संबंध बाहरी तेज से संभव नहीं, अध्यात्म प्रेरित लेश्या (ओरा) वाला व्यक्ति ही उससे तदाकार हो सकता है। संत अपनी साधना से भीतर की ज्योत प्रकट कर लेते हैं, फिर वे प्राणी मात्र के प्रति करुणा प्रेरित होकर सर्वजनहिताय सर्वजनसुखाय का मार्ग बतलाते हैं। आत्मज्ञान की लौ जलाते हैं।

तेरापंथ तेजस्वी संतों, मनीषियों का संघ रहा है। यहां अनेकों साधु-साध्वियों ने अपनी समुज्ज्वल साधना से पारदर्शिता प्रकट की है। इसके प्रत्येक आचार्य विशिष्ट आभावलय से परिपूर्ण अपने साथ हजारों को ले चलने की क्षमता वाले हुए हैं और होते आए हैं। आचार्य भिक्षु से आचार्य महाप्रज्ञ तक के सभी आचार्य आंतरिक तेज से परिपूर्ण हुए हैं। आचार्य महाप्रज्ञ की प्रज्ञा, पारदर्शिता, दार्शनिकता ने उन्हें भारत के ही नहीं, विश्व के इने-गिने व्यक्तियों में खड़ा कर दिया है।

आचार्य तुलसी का संप्रदायातीत व्यक्तित्व धार्मिक जगत में शताब्दियों में नहीं सहस्राब्दियों में उभरने वाला एक विरल व्यक्तित्व है। एक संप्रदाय विशेष के आचार्य होते हुए भी अपना असांप्रदायिक स्वरूप स्थापित करना दुस्साध्य कार्य है। इस को भी उन्होंने साध्य बनाया। संप्रदाय समन्वयकर्ता व जाति, वर्ण आदि के भेद से मुक्त मानवता के व्याख्याकार के रूप में उभरे। अणुव्रत अनुशास्ता श्री तुलसी आज राष्ट्रीय एकता हित के कार्य करने वालों में प्रमुख माने जाते थे। हर एक का उन्होंने विश्वास अर्जित किया था। तेरापंथ के उदात्त दर्शन की देन है कि इसके आचार्यों की इतनी विराट सोच उभर सकी है।

आध्यात्मिक विकास

इन दो विराट व्यक्तित्वों की छत्र छाया में निर्मित व्यक्तित्व है–आचार्य महाश्रमण। सरदारशहर–चूरू की रेतीली धरती में जन्में एक बालक का इतना तीव्र गति से आध्यात्मिक विकास होगा, किसी ने कल्पना नहीं की होगी। मात्र बारह वर्ष की छोटी उम्र में ममतामय परिवार तथा संपन्न व सुविधाजनक घर की व्यवस्था को त्याग कर साधना पथ पर कदम रखना असाधारण कार्य ही माना जाएगा। बिना प्रज्ञा के जागे ऐसा करना संभव नहीं था।

बचपन में वैरागी अवस्था में ही इनकी सात्त्विक और तीव्र संकल्प शक्ति से परिवार दीक्षा की अनुमति देने हेतु तैयार हो गया। जिस परिवार के भाइयों में संवत्सरी के सिवाय साधुओं के स्थान पर आने की वर्षों से परंपरा नहीं थी। केवल आचार्यवर पधारते, तब आते थे। वह परिवार अपने परिवार के लाडले सदस्य को दीक्षा की अनुमति दे, यह कोई सामान्य घटना नहीं थी। मुझे लगता है–इनके अध्यात्म ओज ने ही सब सदस्यों को प्रभावित किया, अनुमति के लिए अनुकूल बनाया और दीक्षा जैसी असाधारण घटना सहजता से घटित हो गई।

स्वाध्यायी मनोवृत्ति

दीक्षा संस्कार के बाद बालसुलभ चपलता का होना सहज संभाव्य है, किंतु मैंने देखा, नवदीक्षित दोनों मुनियों का कायाकल्प ही नहीं, वृत्ति का बदलाव हो गया। चपलता गायब व दिन-रात अध्ययन, स्वाध्याय में लगे रहना दोनों का स्वभाव बन गया। इसमें भी बाल मुनि उदित का प्रभाव उनके सहदीक्षित मुनि मुदित (युवाचार्य) पर पड़ा हो। कुछ भी हुआ हो, बदलाव एक मुनि में जैसा होना चाहिए वैसा संयम ग्रहण के साथ ही हो गया।

लोगों के लिए भी आश्चर्य था, जो बालक कल तक खेलकूद में मस्त रहते थे, आज वे पढ़ने में इतने तल्लीन कैसे हो गए? कई लोग जो इन दोनों से विशेष परिचित थे, उन लोगों ने मुझे कहा–आपने इन दोनों पर क्या कर दिया, हमें तो चमत्कार लग रहा है।

वयोवृद्ध श्रावक प्रामाणिक प्रवर सेठ सुमेरमलजी दूगड़ ने एक दिन मुझसे कहा–'मैं जब आता हूं तब दोनों बाल मुनियों को पढ़ते व चितारते देखता हूं। कभी ये आपस में हंसी-मजाक भी करते हैं या नहीं? इन दोनों को आप खुला छोड़ा करो। थोड़ी देर तो आपस में इधर-उधर की बातें करें।' मैंने वैसा प्रयोग किया भी, किंतु कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया। उस समय का उपयोग भी वे दोनों किसी न किसी अध्याय को चितारने में लगाते। फिर मैंने ही दोनों को पुरानी संघीय घटनाएं, कभी-कभी कथाएं सुनाने का क्रम बनाया। कभी मुनि श्री सोहनलालजी स्वामी इनको सुनाते। यह प्रयोग जरूर सफल हुआ। संस्कारों के साथ दिल बहलाने का प्रशस्त मार्ग मिल गया।

विकास ऊर्ध्वारोहण की प्रक्रिया है। बीज उगता है तब बरगद बन विश्राम लेता है। दीए की बाती जलती है तब सबको उजाला बांटती है। समंदर का पानी भाप बन ऊंचा उठता है तब बादल बन जमीन को तृप्त करने बरसता है। जीवन का ऊर्ध्वारोहण भी विकास की ऐसी ही प्रक्रिया से गुजरता है।

बचपन से ही इनमें उच्चारण शुद्धि और शीघ्र कंठस्थ की क्षमता भी बेजोड़ थी। कई बार तो तीन-चार घंटों में 25-30 संस्कृत व प्राकृत भाषाओं के श्लोक कंठस्थ कर सुना देते थे।

प्रौढ़ तत्त्वज्ञान

सात्त्विक व सैद्धांतिक बातों में बालमुनि मुदित (आचार्य महाश्रमण) की विशेष अभिरुचि थी। उस समय उन्होंने अनेक थोकड़े कंठस्थ कर लिए थे। तत्त्व संबंधी उनकी जिज्ञासा एक प्रौढ़ व्यक्ति के समकक्ष होती थी। मुझे स्वयं आश्चर्य होता था इतनी जटिल और रहस्य की जिज्ञासा इस उम्र में उभरी कैसे? कभी भी कोई तात्त्विक प्रसंग किसी के साथ चलता उस समय वे इधर-उधर भी होते तो पता लगते ही पास में आकर बैठ जाते और बड़ी जिज्ञासावृत्ति से सुनते।

अनुकरणीय संघनिष्ठा

छोटी उम्र, छोटा शरीर, दुर्बल देह फिर भी अध्यात्म की प्रखर लौ। समय के साथ अनेक उतार-चढ़ाव भी आए, परिस्थितियों के ज्वार ने भी झकझोरा, फिर भी ध्येय पर डटे रहे।

एक अवसर ऐसा भी आया–आप जिस संत के सिंघाड़े में थे उन्होंने किसी घटना प्रसंग के कारण संघ से पृथक होने का निर्णय ले लिया। उनका आपके साथ बहुत ही आत्मीय व्यवहार था। इस निर्णय की जब आपको अवगति मिली तो तत्काल दृढ़ता से बोले–'मैं संघ में रहूंगा, संघ में ही साधना करूंगा।' एक षोडश वर्षीय बाल मुनि के इस उत्तर में संघ निष्ठा का स्पष्ट निदर्शन था। यह एक अनुकरणीय इतिवृत्त बन गया।

प्रगति यात्रा

पूज्य गुरुदेव व आचार्यप्रवर की सन्निधि में इनकी संयम यात्रा चतुर्मुखी विकास करती हुई चल रही थी। अचानक एक मोड़ आया। संवत 2041 की गर्मियों में आपकी गुरुदेव की निजी सेवा में नियुक्ति की गई। लगता है वह सलक्ष्य किया गया था। इस प्रक्रिया के तहत पूज्य गुरुदेव की विशेष सन्निधि मिलने लगी। अनायास उनके अनुभवों को सुनने व जानने का अवसर मिल गया। कठिन परिश्रम के आदी पहले से थे, प्रयोग करने का मौका अब मिल गया था।

संवत 2042 माघ शुक्ला सप्तमी, उदयपुर (राजस्थान) में आपको युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ का 'अंतरंग सहयोगी' बना दिया। तब से वे प्रशासनिक कार्य व धर्म संघ की आंतरिक सारणा-वारणा के कार्य में युवाचार्यश्री के पास में बैठने लगे। साधु-साध्वियों की व्यवस्था कैसे की जाए, इसकी समुचित जानकारी करने का अवसर मिल गया।

योगक्षेम वर्ष में पट्टोत्सव के अवसर पर भाद्रपद शुक्ला नवमी के मध्याह्न में चतुर्विध संघ की उपस्थिति में आपको धर्मसंघ में 'महाश्रमण' पद से अलंकृत किया गया था। यह पद वैसे उसी वर्ष निर्मित हुआ था। आप पहले महाश्रमण बने। साध्वीप्रमुखाश्री साध्वियों में पहली 'महाश्रमणी' बनी।

गुरुदेवश्री तुलसी के महाप्रयाण के बाद आचार्यवर ने मात्र तीन माह के भीतर 14 सितंबर, 1997 को गंगाशहर में करीब एक लाख लोगों की रिकॉर्ड उपस्थिति में अपना उत्तराधिकारी 'युवाचार्य' घोषित किया। हमें इस उदीयमान उज्ज्वल नक्षत्र से बहुत आशाएं हैं। ❑

कथा दो पन्नों की

कन्हैयालाल छाजेड़

अनुकूल हवा, पानी, खाद और माली का समुचित संरक्षण पाकर जिस प्रकार एक पौधा समय के साथ विशाल वृक्ष का रूप ले लेता है, ठीक उसी प्रकार बचपन का नटखट और चंचल बालक मोहन अपने गुरुओं—आचार्य श्री तुलसी और आचार्य श्री महाप्रज्ञ के अपरिमित स्नेह, वात्सल्य की छांव में शिक्षण, प्रशिक्षण और परीक्षण के दौर से गुजरता हुआ तेरापंथ धर्मसंघ का सरताज बनकर आचार्य महाश्रमण के रूप में जन-जन की आंखों का तारा बन गया।

इसके साथ ही यह बात भी सच है और इतिहास साक्षी है कि महापुरुष यकायक धरती पर नहीं उतर आते। बचपन में संस्कारों के बोये बीज, भाग्य, पुरुषार्थ, काल, नियति और कर्म के साये में वे उर्ध्वारोहण करते हैं। महाश्रमण भी भाग्य और पुरुषार्थ की सीप में जन्मा वो मोती है जिसकी अमिताभ दीप्ति संघ की रोशनी बन रही है।

आचार्य श्री महाश्रमण गृहस्थ जीवन में वैरागी बनने के बाद अपने उद्देश्य के प्रति कितने जागरूक थे, कितने पुरुषार्थी, कितने सतत अध्यवसायी और कितने अप्रमत्त थे, इसका प्रमाण है उनकी बचपन की लेखनी से सुंदर अक्षरों में लिखा योजनाबद्ध दिनचर्या का वह पन्ना, जिसमें आपने लिखा था—सुबह उठना सूर्योदय से 1.30 घण्टा पहले। फिर क्रमशः पूरे दिनभर की एक-एक मिनट की दिनचर्या का उल्लेख है ताकि समय का एक पल भी प्रमाद में न बीते। पन्ने के अंत में आपने लिखा है—अगर दिनचर्या में एक मिनट का भी अंतर आ जाए तो दो गाथा स्वाध्याय करनी।

प्रसंगवश आपके द्वारा वैरागी अवस्था में ही लिखे गये एक अन्य पत्र का उल्लेख करना समीचीन होगा। तत्त्व ज्ञान को कंठस्थ करने और गूढ़ तत्वों को समझने का प्रत्यक्ष प्रमाण है आपश्री द्वारा परम पूज्य गुरुदेव श्री तुलसी को निवेदित वह पत्र, जिसमें आपने ऐसे थोकड़ों का उल्लेख किया है जिन्हें उस अल्पावस्था में कंठस्थ करना दुष्कर कार्य ही माना जायेगा। वे थोकड़े हैं-पाना की चर्चा, तेरहद्वार, लघु-दंडक, गतागत, बासठियों, बावन-बोल, अल्पाबोहत, विचार-बोध, जैन तत्व बोध (प्रथम भाग), कर्म प्रकृति पहली आदि।

दीक्षित होने के बाद बालक मोहन मुनि मुदित बन गये। परम पूज्य गुरुदेव श्री तुलसी की पारखी नजरों ने मुनि मुदित के अंदर छुपी हुई अपार क्षमताओं को पहचाना। गुरुदेव श्री तुलसी मुनि नथमलजी को अपना उत्तराधिकारी बनाकर निश्चिंत हो गये थे, पर वे अपने युवाचार्य को भी इस दृष्टि से निश्चिंत बना देना चाहते थे। इसी दृष्टि से सर्वप्रथम आपने मुनि मुदित को महाश्रमण का अलंकरण प्रदान कर युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ के साथ गण-संचालन में सहभागिता का नियुक्ति पत्र सौंपा और फिर एकांत में संघ के भविष्य को सरजते रहे, संवारते रहे। यथासमय आचार्य श्री महाप्रज्ञजी ने मुनि महाश्रमण को अपने उत्तराधिकारी युवाचार्य के रूप में मनोनित किया और वे भी संघ के भविष्य की दृष्टि से निश्चिंत हो गये।

उस समय मैं और मुमुक्षु शान्ता, जैन भारती के क्रमशः प्रधान संपादक और संपादक थे। हमने जैन भारती का 'युवाचार्य विशेषांक' निकालने का निर्णय

किया। इस अंक के लिए युवाचार्य श्री के बचपन के संस्मरण संग्रह करने हेतु हम उनके पारिवारिक जनों के पास पहुंचे। तब हमें अन्य सामग्री के साथ-साथ उपरोक्त दोनों पत्र भी प्राप्त हुए। इन दोनों पन्नों का उल्लेख मैंने विस्तार से इसलिए किया है कि बालक मोहन के वे संस्कार पल्लवित और पुष्पित होकर आज आचार्य श्री महाश्रमण के जीवन में कदम-कदम पर मुखरित हो रहे हैं। संयम ग्रहण करने के पश्चात आपने अनेकानेक आगमों एवं आगमेतर ग्रंथों के हजारों श्लोकों व पद्यों को कंठस्थ कर लिया जो आज आपके प्रवचनों एवं सामयिक चर्चाओं का श्रृंगार बन रहे हैं। इसी तरह उपरोक्त एक पन्ने पर भी लिखा गया समय प्रबंधन का वह बोधपाठ आपकी वर्तमान जीवन-चर्या का अभिन्न अंग बन गया है।

आपका हर कार्य 'मिनट टू मिनट' के आधार पर संपादित होता है। ऐसा समय प्रबंधन और कार्य नियोजन कौशल अन्यत्र दुर्लभ है। इन पन्नों की एक और विशिष्टता का उल्लेख करना भी आवश्यक है। बचपन में लिखे गये इन पन्नों का लेखन इतना शुद्ध है कि कहीं एक भी अशुद्धि नहीं है। उसी का परिणाम है कि आज आपके सामने आने वाले किसी भी लेखन की अशुद्धि नजरों से छुप नहीं सकती।

मुनि मुदित से महाश्रमण, महाश्रमण से युवाचार्य महाश्रमण और फिर आचार्य महाश्रमण के पदाभिरोहण की यात्रा तक आप अत्यंत सूक्ष्मता से तेरापंथ धर्मसंघ और समाज की अंतरंग और बहिरंग स्थितियों का अंकन करते रहे। न किसी प्रकार की अभिव्यक्ति, न प्रतिक्रिया। श्रेष्ठ श्रोता और सम्यक् दृष्टि बने रहे। किंतु आचार्य बनने के बाद श्रेष्ठ श्रोता श्रेष्ठ अनुशास्ता बन गये और सम्यक दृष्टा ने सम्यक् दृष्टि से संघ व्यवस्था के ढीलें तारों को कसना शुरू कर दिया और तब संपूर्ण धर्मसंघ को आचार्य महाश्रमण में आचार्य तुलसी की रंगत दिखाई देने लगी। युगद्रष्टा गुरुदेव श्री तुलसी की एक शिक्षा–कभी सुविधावाद को प्रश्रय मन देना—न केवल आपकी चर्या का अभिन्न अंग बन गया अपितु धर्मसंघ के लिए आपने इस मंत्र को बोधपाठ बना दिया। टापरा एवं गंगाशहर मर्यादा महोत्सवों पर आप द्वारा की गई उद्‌घोषणाएं जन-जन के द्वारा मुक्त कंठ से समाहत हुईं। ऐसा लगा जैसे चतुर्विध धर्मसंघ के सामने आपने करणीय-अकरणीय की लक्ष्मण रेखा खींच दी। वर्तमान में संघ और समाज को ऐसे ही अनुशास्ता की अपेक्षा थी।

आपकी संकल्प–शक्ति अद्‌भुत है, बेजोड़ है। आचार्य श्री तुलसी जन्म शताब्दी के अवसर पर एक सौ महाव्रती दीक्षा देने का हिमालयी संकल्प करना और उसे निर्धारित तिथि तक पूरा कर लेना (अब तक दीक्षित एवं घोषित दीक्षाओं को मिलाकर संकल्प पूरा होने जा रहा है) किसी महान संकल्पी व्यक्तित्व एवं महाप्रतापी, तेजस्वी साधक की उत्कृष्ट साधना की परिणति है। आप द्वारा घोषित अनेक वर्षों तक चलने वाली दुर्गम क्षेत्रों की सुदीर्घ यात्राएं, चातुर्मास, मर्यादा-महोत्सव एवं समायोजनों की अग्रिम घोषणाएं आप जैसे महातपस्वी, महामनस्वी संकल्प के धनी महापुरुष ही कर सकते हैं।

आपका आहार-संयम, दृष्टि-संयम, भाषा-संयम, संयम की किन-किन विधाओं पर दृष्टिपात करें, ऐसा लगता है आप सर्वांगी संयम के पर्याय बन गयें हैं। आपकी अल्पभाषिता हर पल-हर क्षण मुखर होती रहती है। करुणा का अजस्र स्रोत आप के अंदर निरंतर बहता रहता है। साधु-साध्वियों की चित्त समाधि के लिए आप सतत जागरूक रहते हैं और उसके लिए तत्काल समुचित व्यवस्था करते हैं।

कष्ट सहिष्णुता के जीवंत प्रतीक, संकल्प के धनी, करुणा के सागर, महान साधक, महान परिव्राजक, महातपस्वी आचार्य श्री महाश्रमण के श्लाघनीय व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व पर संपूर्ण धर्मसंघ श्रद्धानत है, प्रमुदित है और आह्लाद का अनुभव कर रहा है। आप दीर्घायु हों और सर्वांग निरामय रह कर धर्मशासन की अनुशासना करते रहें।

मंगलकामना! वंदन अभिनन्दन! ❑

त्वमेव माता च पिता त्वमेव

नचिकेता बालमुनि मृदुकुमार

आचार्य महाश्रमण को मैं मां की उपमा से उपमित करूं या पिता की। आपने मुझे मां की ममता और पिता का वात्सल्य, दोनों प्रदान किया। जब भी मैं अपने जीवन प्रसंगों को याद करता हूं तो मेरे रोम-रोम खड़े हो जाते हैं और मैं आपकी वत्सलता से अंतस् तक भीग जाता हूं। मैं अपने अविस्मरणीय प्रसंगों को आप तक बांट कर अपने गुरु की करुणा से आप सभी को भी अभिस्नात करवाना चाहता हूं।

मैं एक अबोध बालक। जिसने संयम जीवन की दहलीज पर कदम उठाया। मैं नहीं जानता था कि संयम जीवन में कितने कष्ट आते हैं। आज भी मैं इससे अनभिज्ञ हूं, क्योंकि गुरु की करुणा ने मुझे कष्टों का सामना ही नहीं करने दिया।

लोग कहते हैं संयम जीवन कांटों का ताज है। उस जीवन में नाना प्रकार के कष्टों का सामना करना पड़ता है—सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास आदि-आदि। किंतु मुझे तो उससे कुछ भिन्न ही देखने को मिला।

आषाढ का माह। मैं पूज्य गुरुदेव के साथ पहाड़ी इलाकों में यात्रायित था। यात्रा के दौरान दिन में गर्मी का एहसास हुआ, किंतु रात होते-होते ठंड होने लगी। आचार्यवर ने (तत्कालीन युवाचार्य) संतों से कहा, आज भीतर सोते हैं। रात को संभावना है कि ठंड हो जाएगी। मैं आचार्यवर के पास ही पास खड़ा था। आचार्यप्रवर ने मेरी ओर देखकर फ़रमाया—बोलो मृदुजी! ठीक है ना? मैंने अर्ज की 'तहत', पर मुझे गर्मी लग रही है। मैं बाहर सोना चाहता हूं। आचार्यप्रवर ने मेरी भावना देखकर फरमाया—चलो, हम भी बाहर सो जाते हैं। रात में ठंड बढ़ी, आचार्यप्रवर को कंबल धारण करना पड़ा। मुझे भी ठंड का एहसास होने लगा, मैं उठकर कमरे में चला गया। किंतु आचार्यप्रवर पूरी रात बाहर ही पोढाए। आज भी मैं जब उस गुरुकृपा को याद करता हूं तो मेरा अंतस् ठंड से कंपित हो जाता है।

श्रीडूंगरगढ़ का प्रसंग। बाल चपलता के कारण मैं सीढ़ियों से गिर गया और गिरते ही मेरे पैर में फ्रेक्चर हो गया। पक्का पट्टा बंधा। प्रसंग कष्टप्रद हो सकता है किंतु उस क्षण में भी आपकी करुणा ने मुझे सुख का संसार दिखाया। आप प्रतिदिन मुझे दर्शन देने पधारते और वहां विराजकर मेरे लिए संस्कृत के श्लोक रचना कर मुझे जीवन मूल्यों का बोध कराते और मेरे भीतर में कष्ट का एहसास नहीं होने देते। और प्रायः फरमाते– कोई चिंता नहीं करना, सब ठीक हो जाएगा। अवसर मिला है, खूब स्वाध्याय में समय बिताओ। गुरु की प्रेरणा ने मेरे भीतर में आनंद के स्रोत का प्रस्फुटन कर दिया। आज भी जब मैं उन श्लोकों को याद करता हूं तो मुझे न केवल सद् शिक्षाएं मिलती है अपितु उनका स्मरण करते हुए मैं आचार्यप्रवर के प्रति अतिशय श्रद्धा से नत हो जाता हूं।

कहा जाता है संयम जीवन के बाईस परीषहों में क्षुधा परीषह बहुत कष्टप्रद होता है और बाल्यावस्था में उसका और अधिक एहसास किया जा सकता है। किंतु मुझे याद नहीं कि कभी क्षुधा का परीषह सहने का प्रसंग मेरे सामने आया हो। मैं आचार्यश्री महाप्रज्ञ की सन्निधि में आहार करता और युवाचार्य (वर्तमान आचार्य) अपने नियत कक्ष में किंतु मैं जब भी आचार्यप्रवर के पास आहार कर युवाचार्य की सन्निधि में पहुंचता तब आप मुझे फरमाते–'आओ! मृदुजी क्या लोगे?' और स्वयं आहार की ऊनोदरी कर अपने पात्र का आहार मेरे पात्र में डलवाते।

इतना ही नहीं, कभी-कभी आपश्री अपने पवित्र कर कमलों से मेरे मुख में ही कवल बख्सा देते। वह कवल आहार आज भी मेरे में अध्यात्म की चेतना का संचार कर रहा है और मेरे संयम जीवन का ओज आहार बना हुआ है।

बाल सपनों का संसार कुछ अलग ही होता है। उदयपुर में पंचरत्न काम्प्लेक्स में विजयसिंहजी सुराणा के घर में प्रवास हो रहा था। घर से कुछ ही दूर खुला मैदान था, जो जंगल का एहसास करा रहा था। मैं रात में सो रहा था। अचानक मुझे डरावना-सा सपना आया और मैं जाग गया। मुझे डर लगने लगा। मैंने डर-डर में आचार्यवर को उठा दिया। मुझे नहीं पता था कि इतनी सामान्य बात के लिए आचार्य को कष्ट नहीं देते। किंतु आचार्यप्रवर ने मेरी बाल चपलता को अन्यथा नहीं लिया।

मुझे फरमाया–क्या हुआ?

मैंने कहा–भूत-भूत। मुझे डर लग रहा है।

आचार्यप्रवर ने फरमाया–'यहां कोई भूत नहीं है। यह तो हवा के कारण पेड़ के पत्तों के हिलने की आवाज आ रही है।' और मेरे डर के निवारण के लिए रात्रि में आध्यात्मिक मंत्रों का जप करवाया, तथा मुझे नींद आ जाने के बाद ही आपश्री पुनः पोढाए।

ऐसे ही प्रसंग की एक बार पुनरावृत्ति हुई। तब आचार्यवर ने मुनि ऋषभकुमारजी स्वामी को फरमाया– 'यह अभी छोटा है। रात को डर जाता है। इसलिए इसे आज से मेरे पास ही सुला दिया करो। रात को कोई कठिनाई होगी तो मैं इसे संभाल लूंगा।'

गुरु वात्सल्य युक्त मंत्रों की ऊर्जा आज भी मेरे में शौर्य का जागरण कर देती है।

न जाने मेरे जीवन में ऐसे कितने प्रसंग बने होंगे। उन सबको लिख दूं तो संभव है एक महाग्रंथ बन जाए। ठंडी रात्रि में बदन से वस्त्र हट जाने पर स्वयं उठकर उसे ठीक करना। पछेवड़ी बिखर जाने पर उसे ठीक से बांधना आदि। इस प्रकार साधु जीवन में गुरु के इस वात्सल्य और उपकार से दिन-प्रतिदिन ऋणी बनता गया और बन रहा हूं। न जाने कब में उऋण बन पाऊंगा।

उन महान उपकारों का स्मरण करते हुए एक पद्य निरंतर मेरे मानस पटल पर उभर आता है–

त्वमेव माता च पिता त्वमेव।
त्वमेव बंधु च सखा त्वमेव।।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव।
त्वमेव सर्वं मम देव देव।। □

कैसे हुई शुरुआत आचार्यों की अंतरंग परिषद में?

आचार्य महाश्रमण की कलम से....

तुम क्या काम कर सकते हो?

थली प्रदेश की यात्रा संपन्न कर पूज्य गुरुदेव तुलसी जैन विश्व भारती, लाडनूं पधारे। वहां एक दिन भिक्षु विहार के ऊपरी भाग में स्थित एक प्रकोष्ठ में विराजमान गुरुदेव तुलसी ने मुझसे पूछा–'तुम क्या काम कर सकते हो?' मैंने निवेदन किया कि जो आप फरमाएं वह करने को तैयार हूं। तब गुरुदेव ने कहा–'अब तुम हमारी निजी सेवा में रहा करो, पंचमी समिति का पात्र वहन किया करो।' मैंने वह कार्य शुरू किया। यह कार्य मेरे से पहले संघ परामर्शक मुनिश्री मधुकरजी (गंगाशहर) किया करते थे। इस कार्य में नियुक्त होने वाला मुनि आचार्यों की सेवा के एक विशेष दायित्व से जुड़ जाता है। वह सौभाग्य मुझे मिला। गुरुदेव तुलसी और श्री महाप्रज्ञ प्रायः साथ-साथ पंचमी समिति के लिए पधारते थे। मैं भी साथ ही रहता था। इसलिए मुझे दोनों गुरुवरों की साथ-साथ सेवा करने का मौका मिलता। इस प्रकार मैं गुरुदेव तुलसी व श्री महाप्रज्ञ के काफी निकट हो गया।

अघोषित निजी सचिव

विक्रम संवत 2041 का जोधपुर चतुर्मास संपन्न कर गुरुदेव तुलसी और श्री महाप्रज्ञ बालोतरा पधारे। वहां एक बार रात्रि के समय गुरुदेव तुलसी और श्री महाप्रज्ञ दोनों पास-पास विराजमान थे, मुझे याद किया गया। मैं पूज्यवरों के उपपात में पहुंचा। गुरुदेव ने कहा–'लिखने के लिए एक कापी लाओ और जब भी हम याद करें, कापी साथ लाया करो।' उस दिन से मैं गुरुदेव और श्री महाप्रज्ञ के प्रशासनिक कार्य के साथ कुछ अंशों में जुड़ गया। एक प्रकार से मैं अघोषित निजी सचिव-सा बन गया और वह क्रम आगे बढ़ता गया।

संघीय अंतरंग कार्यों में मेरा सहयोग

बालोतरा से प्रस्थान कर गुरुदेव तुलसी जसोल पधारे। वहां मर्यादा-महोत्सव होने वाला था। मर्यादा-महोत्सव का एक प्रमुख कार्य होता है–चतुर्मासों की घोषणा। उसकी तैयारी में काफी चिंतन और समय लगता है। मुझे स्मरण है कि चतुर्मास-निर्धारण कार्य में मुझे भी जोड़ा गया था। एक दिन मध्याह्नकालीन आहार के बाद मैं गुरुदेव तुलसी के उपपात में गया। गुरुदेव ने फरमाया–'तुम बैठो और चतुर्मास लिखो।' गुरुदेव फरमाते गए और मैं चतुर्मास लिखता गया। तब से मैं आचार्यप्रवर व श्री महाप्रज्ञ का अघोषित आंतरिक सहयोगी बन गया था।

चतुर्मास-निर्धारण के लिए अपेक्षित साधु-साध्वियों के सिंघाड़ों की नामसूची भी महाप्रज्ञ मेरे से लिखवाते थे। इस कार्य का प्रारंभ विक्रम संवत 2041/42 से हो गया था। ये कुछ बातें इतने वर्षों के बाद अपनी स्मृति के आधार पर प्रस्तुत कर रहा हूं। जिस भाषा में प्रस्तुतीकरण हो रहा है, उसमें यत्किंचित अंतर भी रह सकता है। फिर भी मुझे विश्वास है कि बहुलांश यथावत ही प्रस्तुत हो रहा है।

आंतरिक कार्य में सहयोगी

विक्रम संवत 2042, माघ शुक्ला सप्तमी। उदयपुर का भंडारी दर्शक मंडप। मर्यादा-महोत्सव का मुख्य कार्यक्रम। गुरुदेव तुलसी ने साध्वी यशोधराजी (लाडनूं) को साध्वी नियोजिका के रूप में नियुक्त किया। उसके बाद मेरा नाम उच्चरित किया। मैं गुरुदेव के उपपात में पहुंचा। गुरुदेव ने कहा–'मैं एक और निर्णय करना चाहता हूं, वह भी महत्त्वपूर्ण है। इस घोषणा के साथ ही नियुक्ति-पत्र का वाचन किया गया, जो इस प्रकार है–

महाश्रमण पद प्रदान

विक्रम संवत 2046, भाद्रपद शुक्ला नवमी (9 सितम्बर, 1989) को गुरुदेव तुलसी का चौवनवें पट्टोत्सव समारोह कार्यक्रम चल रहा था–उसके मध्य गुरुदेव तुलसी ने मुझे 'महाश्रमण' पद पर मनोनीत किया। धर्मसंघ में युवाचार्य के बाद मेरा स्थान निर्णीत किया गया। मेरे सम्मान की व्यवस्था की गई और श्री महाप्रज्ञ का मुझे सतत सहयोगी बनाया गया। उस समय गुरुदेव ने नियुक्ति-पत्र का वाचन किया, जो इस प्रकार है–

अर्हम्

अध्यात्मनिष्ठा, साधना, शिक्षा, सेवा, विनम्रता, संघनिष्ठा, गंभीरता आदि विशेषताओं को ध्यान में रखकर मैं मुनि मुदितकुमार को 'महाश्रमण' के पद पर नियुक्त करता हूं।

1. धर्मसंघ में युवाचार्य के बाद इसका स्थान रहेगा।
2. यह युवाचार्य के कार्य में सतत सहयोगी रहेगा।
3. युवाचार्य की तरह साध्वियों, समणियों आदि को पढ़ाना इसके कार्यक्षेत्र में होगा।
4. आहार-पानी समुच्चय में होगा।
5. सब प्रकार के विभागीय कार्यों तथा संघीय बोझ की पांती से मुक्त रहेगा।

जैन विश्वभारती, लाडनूं **–आचार्य तुलसी**

54वें पट्टोत्सव के उपलक्ष्य में

9 सितम्बर, 1989

इसके साथ साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी को गुरुदेव तुलसी ने 'महाश्रमणी' पद पर नियुक्त किया।

महाश्रमण पद का नवीनीकरण

विक्रम संवत 2051, माघ शुक्ला सप्तमी (6 फरवरी, 1995) के दिन पूज्य गुरुदेव तुलसी ने मर्यादा-महोत्सव के समारोह में महाश्रमण पद का नवीनीकरण किया। पहले मैं युवाचार्य महाप्रज्ञ का सहयोगी था, चूंकि अब युवाचार्य महाप्रज्ञ आचार्य बन गए थे, इसलिए मुझे आचार्यश्री महाप्रज्ञ का सहयोगी महाश्रमण बनाया गया। उस संदर्भ में लिखे गए नियुक्ति-पत्र का वाचन स्वयं गुरुदेव तुलसी ने किया और फिर मुझे वह पत्र उपहृत किया। वह पत्र अपने-आपमें अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। पत्र की भाषा इस प्रकार है–

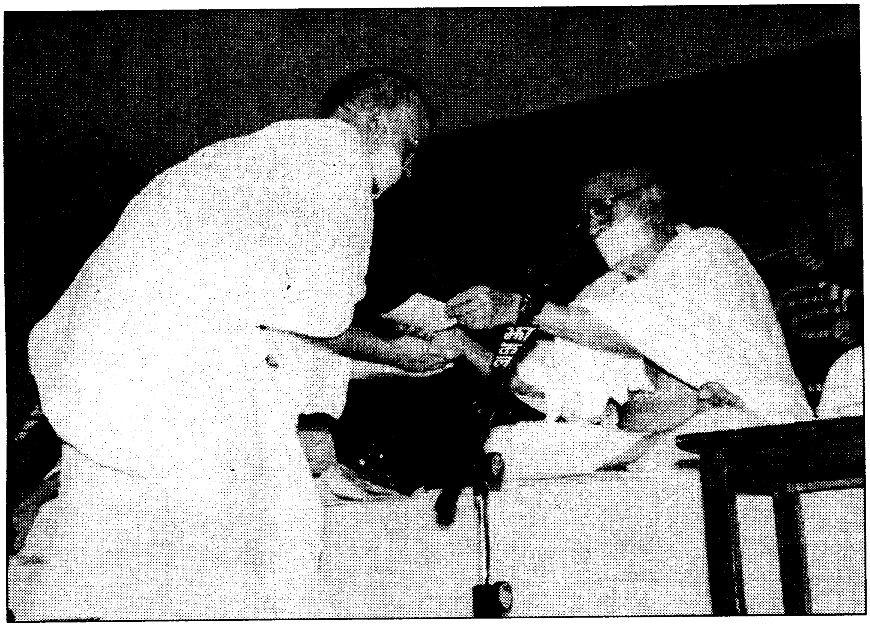

आचार्यश्री तुलसी द्वारा 'महाश्रमण पद' प्रदान करते हुए नये भविष्य पर हस्ताक्षर

अर्हम्

योगक्षेम वर्ष (विक्रम संवत 2046) के अवसर पर महाश्रमण को प्रदत्त पत्र एवं उसमें उल्लिखित विवरण से स्पष्ट है कि यह हमारे धर्मसंघ का कार्यकारी पद है, मात्र अलंकरण नहीं है।

वह पत्र युवाचार्य के संदर्भ में लिखा गया था। अब महाप्रज्ञ आचार्य बन गए हैं। अतः आचार्य के संदर्भ में मुनि मुदितकुमार को महाश्रमण के पद पर पुनः प्रतिष्ठित करता हूं।

महाश्रमण मुनि मुदितकुमार आचार्य महाप्रज्ञ के गण-संचालन के कार्य में सतत सहयोगी रहे तथा स्वयं गण-संचालन की योग्यता विकसित करे। इसके लिए अवशेष जो करणीय है, वह उचित समय पर आचार्य महाप्रज्ञ करेंगे।

नई दिल्ली (अध्यात्म साधना केन्द्र) **—गणाधिपति तुलसी**

विक्रम संवत 2051 माघ शुक्ला 6
5 फरवरी, 1995 रविवार

इस पत्र के माध्यम से गुरुदेव तुलसी ने मेरा मार्गदर्शन भी कर दिया और साथ में भविष्य का स्पष्ट संकेत भी दे दिया। गुरुदेव तुलसी ने कहा–'हमने सब-कुछ दे दिया और कुछ भी नहीं दिया।' महाश्रमणी कनकप्रभाजी के लिए भी 'महाश्रमणी' पद का नवीनीकरण किया गया।

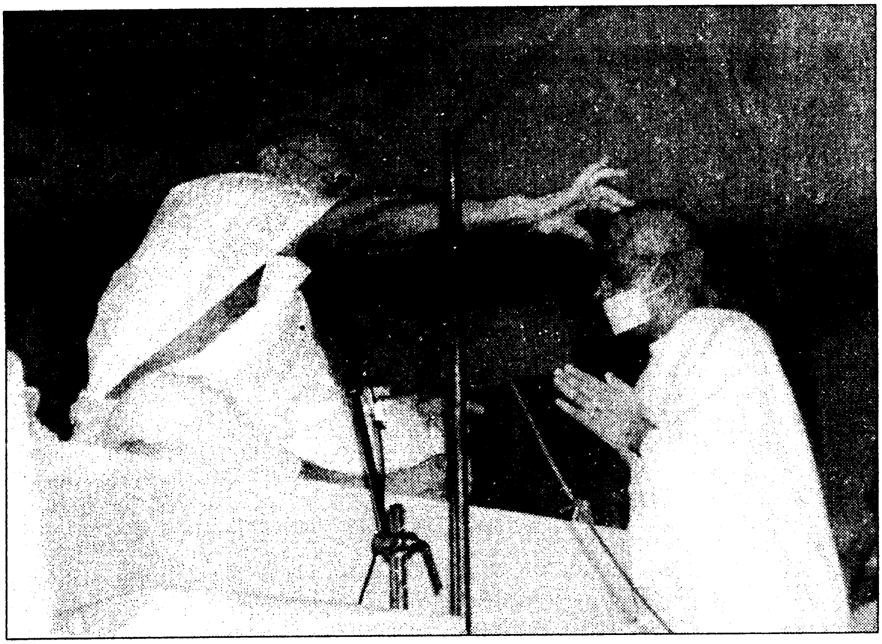

आचार्यश्री महाप्रज्ञ द्वारा युवाचार्य मनोनयन के अवसर पर आशीर्वाद के रूप में ऊर्जा संप्रेषण

युवाचार्य मनोनयन

पूज्य गुरुदेव तुलसी के स्वर्गवास के बाद एक दिन श्री महाप्रज्ञ ने अपने प्रातःकालीन प्रवचन में फरमाया कि मैं माणकगणी की घटना की पुनरावृत्ति नहीं होने दूंगा और शीघ्र ही अपने उत्तराधिकारी का निर्णय कर लूंगा। इस संकेत के कुछ दिनों बाद 15 जुलाई, 1997 को सायं पांच बजकर लगभग दस मिनट पर श्री महाप्रज्ञ ने 'युवाचार्य मनोनयन' की तिथि भी निर्णीत कर दी। तदनुसार विक्रम संवत 2054, भाद्रपद शुक्ला द्वादशी, रविवार (14 सितम्बर, 1997) का दिन 'युवाचार्य-मनोनयन' के लिए निर्धारित हो गया। उन्हीं दिनों मेरा स्वास्थ्य प्रतिकूल बन गया। श्री महाप्रज्ञ भी कुछ चिंतित हो गए। श्वास लेने में मुझे कठिनाई होने लगी। पेट भी अस्त-व्यस्त-सा रहने लगा। खाने की रुचि कम हो गई। कुछ अन्य भयंकर स्थिति भी सामने आने लगी। इन सारी स्थितियों को वृद्धावस्था होने पर भी पूज्य श्री महाप्रज्ञ ने बहुत अच्छे ढंग से संभाला। कुल मिलाकर वह एक कठिन समय था, श्री महाप्रज्ञ ने जिसका बखूबी मुकाबला किया।

भाद्रपद शुक्ला द्वादशी (14 सितम्बर, 1997) का प्रभात। श्री महाप्रज्ञ ने लगभग साढ़े नौ बजे अपने संघ परिवार के साथ तेरापंथ भवन (गंगाशहर) से प्रस्थान किया और लगभग एक किलोमीटर का मार्ग तय कर चौपड़ा हाई स्कूल के प्रांगण में पधारे। श्री महाप्रज्ञ मंच पर आसीन हुए। उनके द्वारा नमस्कार महामंत्र के उच्चारण के साथ कार्यक्रम का शुभारंभ हुआ। अनेक व्यक्ति बोले। कार्यक्रम का संयोजन श्री लूणकरणजी छाजेड़ ने किया। श्री महाप्रज्ञ ने अपने अभिभाषण में कहा–

'पूज्य गुरुदेवश्री तुलसी जब चौसठ वर्ष के हुए तो उन्होंने इसी गंगाशहर में चिंतन किया और राजलदेसर में उसको क्रियान्वित किया। मुझे युवाचार्य बना दिया और फिर स्वयं के आचार्यपद का विसर्जन कर मुझे आचार्य भी बना दिया। जिस दिन युवाचार्य बना, दिमाग में प्रश्न उभर आया कि आगे के लिए सोचना है। जब गुरुदेव की स्मृति में 'स्मृति सप्तक' मनाया गया, अनुष्ठान किया गया, तब मैंने कहा कि हमारे संघ में आज तक जो युवाचार्य की नियुक्ति की गई है, सबसे अधिक अवस्था में युवाचार्य की नियुक्ति भारमलजी स्वामी ने चौहत्तर वर्ष की अवस्था में की। उसके बाद गुरुदेव ने की। अन्य आचार्यों ने पहले कर दी। मैं तो सबको ही पार कर गया। सतहत्तर वर्ष पूरे कर चुका। आठवां दशक चल रहा है। इसलिए अब मेरा कर्तव्य है कि मैं जल्दी इसको निर्णय का रूप दे दूं। मैंने युवाचार्य मनोनयन की घोषणा कर दी। सबके मन में जिज्ञासा है कि कौन होगा युवाचार्य? होगा तो कोई मुनि ही, गृहस्थ तो होगा नहीं। होगा हमारे भीतर से और वही होगा जिसने युवाचार्य की अर्हता अर्जित की है। वैसे तो अनेक हैं हमारे सामने, पर जिसने विशेष अर्हता अर्जित कर ली है और जिस पर ध्यान केंद्रित हो गया है, वही होगा।

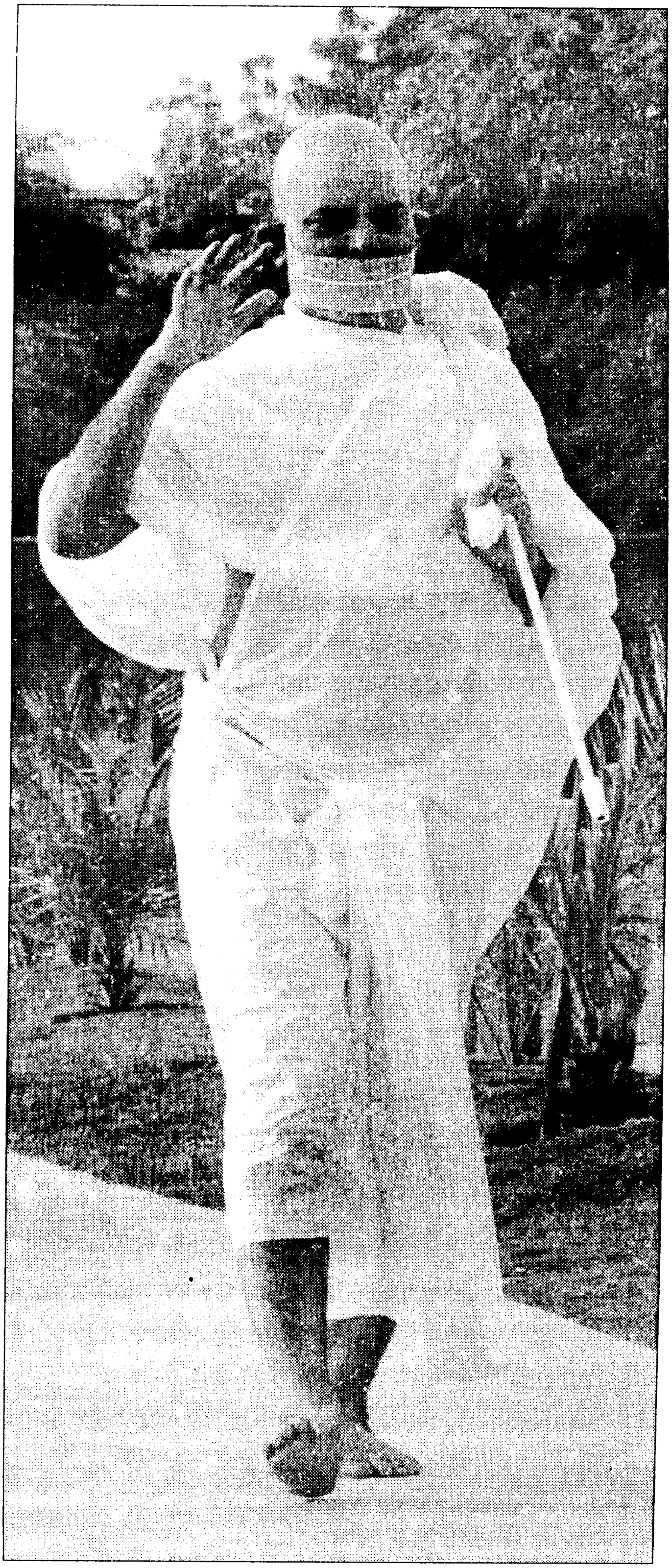

युवाचार्य क्यों? यह प्रश्न आता है। हमारी जो परंपरा है, वह है–ज्ञान की परंपरा, साधना की परंपरा, साधना के रहस्यों और मंत्रों को खोजने की परंपरा, प्रवृत्ति, प्रयोग, असांप्रदायिक दृष्टिकोण, अनेकांत के दृष्टिकोण की महत्त्वपूर्ण और गरिमापूर्ण हमारी परंपरा है। आपको आश्चर्य होगा कि हमें अध्यात्म की जो परंपरा मिली है, आज तक तेरापंथ का सवा दो सौ वर्ष से अधिक का इतिहास है, उसमें न किसी के बारे में आलोचना, न निंदा और न आक्षेप। अपना

विकास और सिर्फ अपना विकास। अपने विकास पर दृष्टिकोण केंद्रित। महान शालीन परंपरा, गुरु-परंपरा हमें प्राप्त हुई है। इस परंपरा को अविच्छिन्न रखना आचार्य का काम है। युवाचार्य की नियुक्ति होती है उस परंपरा को अविच्छिन्न रखने के लिए।

प्रश्न पूछा गया–युवाचार्य की कसौटी क्या? युवाचार्य की कसौटी है–जो आचारनिष्ठ, अनुशासननिष्ठ, मर्यादानिष्ठ, अध्यात्मनिष्ठ, ज्ञान-संपन्न हो, जिसकी अध्ययन में रुचि हो और जिसमें आचार्य के प्रति पूर्ण समर्पण हो, परंपरा के प्रति पूर्ण समर्पण हो, जिसमें श्रद्धा और विनय हो, वह युवाचार्य बन सकता है। संघ में एक नहीं, अनेक व्यक्ति ऐसे हो सकते हैं, पर युवाचार्य तो एक होगा।

आचार्य भिक्षु से लेकर अब तक युवाचार्य मनोनयन की परंपरा के दो प्रकार रहे हैं। एक परंपरा है–गुप्त रूप में आचार्य युवाचार्य की नियुक्ति (भावी उत्तराधिकारी) का पत्र लिखकर अपने पुट्ठे में रख देते हैं और उनके स्वर्गवास के बाद उसको खोलकर देखा जाता है तब वह आचार्य बन जाता है। दूसरी परंपरा है–आचार्य नियुक्ति पत्र लिखते हैं, पछेवड़ी ओढ़ाते हैं और उसको युवाचार्यपद पर नियुक्त करते हैं। नए नामकरण पर भी विचार करते हैं और आशीर्वाद देते हैं, शिक्षाएं भी देते हैं। एक यह क्रम है। मैं आज इन दोनों परंपराओं का एक साथ निर्वाह करूंगा। मुझे दोनों का समन्वय करना है। वर्तमान के साथ अतीत को भी जोड़ना है। तो मैं चाहता हूं कि अब उपयुक्त समय है और मैं अपने दायित्व का, जो एक आचार्य पर दायित्व का बड़ा भार होता है, उस भार का निर्वहन करूं और पूज्य गुरुदेवश्री तुलसी के एक इंगित या संकेत का भी क्रियान्वयन करूं। तो आओ, मुनि मुदितकुमार!

दिल्ली में जब मुझे आचार्यपद पर प्रतिष्ठित किया गया, तब पूज्य गुरुदेव ने इन्हें प्रदत्त पत्र में लिखा–'महाश्रमण मुनि मुदितकुमार आचार्य महाप्रज्ञ के गण-संचालन के कार्य में सतत सहयोगी रहे तथा स्वयं गण-संचालन की योग्यता विकसित करे। इसके लिए अवशेष जो करणीय है वह उचित समय पर आचार्य महाप्रज्ञ करेंगे, मुझे हर्ष है कि गुरुदेव का जो इंगित था, आज मैंने उसे क्रियान्वित कर दिया।

दिल्ली प्रवास के बाद इस विषय में हमारा चिंतन चलता रहा। समय-समय पर पूज्य गुरुदेव ने स्पष्ट कहा–'यह कार्य तुम्हारा है। तुम स्वतंत्र रूप में सोचो और निर्णय करो।' लाडनूं चतुर्मास के बाद जब स्वतंत्र रूप से चाड़वास मर्यादा-महोत्सव करने की बात आई तो मैंने गुरुदेव से निवेदन किया–मुझे अपने भावी उत्तराधिकारी की नियुक्ति करनी है। विक्रम संवत 2053 की दीपावली 10/11/96 के दिन मैंने एक पत्र लिखा–

अर्हम्

प्रभवे नमः नमो विभवे

नमोत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स

श्री भिक्षु भारमल ऋषिराय जयजश मघवा माणक डालचन्द कालू तुलसी गुरुभ्यो नमः।

'मैं आज दीपावली के पावन पर्व पर अपने उत्तराधिकारी के रूप में महाश्रमण मुनि मुदितकुमार को नियुक्त करता हूं। मुनि मुदितकुमार की अध्यात्मनिष्ठा और आचारनिष्ठा ने मेरे मन को प्रभावित किया है। विनम्रता भी आकृष्ट करती रही है। मेरा विश्वास है, मुनि मुदितकुमार अपने दायित्व का सम्यक निर्वाह करता हुआ तेरापंथ संघ, भिक्षुशासन की गौरववृद्धि करेगा।

–आचार्य महाप्रज्ञ

(यह पत्र गुरुदेव तुलसी की विद्यमानता में लिखा गया है।)

जय जय ज्योति चरण, जय जय महाश्रमण

'फिर 10 सितम्बर, 1997 (भाद्रपद शुक्ला 8 बुधवार) को युवाचार्य नियुक्ति के संदर्भ में मैंने एक पत्र और लिखा। वह इस प्रकार है–

तेरापंथ भवन
विक्रम संवत 2054 गंगाशहर

अर्हम्

ॐ नमो भगवते ऋषभाय

ॐ नमो भगवते पार्श्वनाथाय

ॐ नमो भगवते महावीराय

श्री भिक्षु भारीमाल ऋषिराय जयाचार्य मघवा माणक डालचन्द कालू तुलसी गुरुभ्यो नमः।

मैं तेरापंथ के दशम आचार्यपद का निर्वाह कर रहा हूं। अब मैं अनुभव कर रहा हूं, मुझे आचार्य के सर्वोत्तम और सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कर्तव्य का अनुपालन करना चाहिए। तेरापंथ धर्मसंघ, भिक्षुशासन की गुरु-परंपरा को अक्षुण्ण रखने के लिए अपने उत्तराधिकारी की नियुक्ति करनी चाहिए। मैं मेरे परम आराध्य गुरुदेव तुलसी के साक्ष्य से मुनि मुदितकुमार को अपने उत्तराधिकारी के रूप में नियुक्त करता हूं।

मुझे विश्वास है कि अध्यात्मनिष्ठा, अनुशासन, विनम्रता और आचारनिष्ठा के साथ भिक्षुशासन की गरिमा को बढ़ाता रहेगा।

–आचार्य महाप्रज्ञ

यह पत्र 'तेरापंथ-भवन' (गंगाशहर) के नीचे वाले भाग (ग्राउण्ड फ्लॉर) के एक कमरे में लिखा गया।

यह पहला कार्य है पत्र द्वारा नियुक्ति। दूसरा कार्य है पछेवड़ी ओढ़ाना। यह कलात्मक पछेवड़ी साध्वियों द्वारा तैयार की गई है, स्वस्तिक चिह्न युक्त। यह पछेवड़ी पहले मैं ओढ़ता हूं, फिर युवाचार्य को ओढ़ाता हूं।

युवाचार्य के साथ दो नाम जुड़े हुए हैं–महाश्रमण और मुदितकुमार। हमारी परंपरा रही है कि आचार्य बनने के बाद उस नाम का कोई साधु संघ में हो तो नाम बदल देना होता है। मेरा नाम था मुनि नथमल। इस नाम के एक साधु और थे। इसलिए मेरा नया नामकरण किया गया। यदि न भी हो तो भी नाम बदला जा सकता है। तो अब आज से इनका नाम होगा–'महाश्रमण'। मैं इन्हें आशीर्वाद देता हूं कि अब तुम जिस कार्यक्षेत्र में आए हो और जिस कार्यक्षेत्र में मैंने तुम्हारा चुनाव किया है, जो दायित्व सौंपा है, मुझे विश्वास है कि तुम पूरी निष्ठा और शक्ति के साथ भिक्षु संघ की सेवा में अपने कण-कण का नियोजन करोगे तथा हमारी गौरवशाली परंपरा को आगे बढ़ाने में सतत सचेष्ट रहोगे।'

पिछले कुछ वर्षों से धर्मसंघ में युवाचार्य का पद रिक्त था। वह आज अपने-आपको भरा महसूस करने लगा। कार्यक्रम की संपन्नता के कुछ समय बाद श्री महाप्रज्ञ अपने नवमनोनीत युवाचार्य को साथ लेकर तेरापंथ-भवन में पधारे।

(वह क्षण प्रणम्य है जब हमें ग्यारहवें अनुशास्ता आचार्य महाश्रमण मिले)

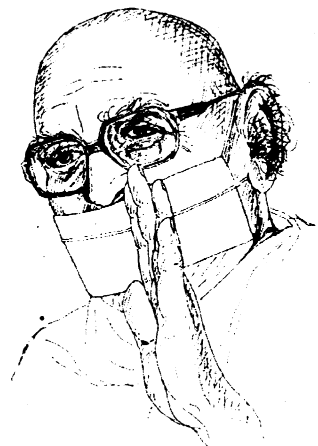

गुरुदेव तुलसी ने दिया बोध पाठ

शिशु शिष्य मुनि मुदितकुमार!

जैसा तुम्हारा नाम है, वैसे ही तुम हर वक्त मुदित-प्रमुदित रहते हो, यह संतोष की बात है। आज तुमको हम गुरुकुलवास से बहिर्विहारी बना रहे हैं। देखो, तुम वहां भी मुदित और प्रमुदित उदित के साथ रहना, जैसे यहां रहते थे। वहां भी हंसते-खेलते, पढ़ते-लिखते रहना, जैसे यहां रहते थे।

जीवन में बहुत प्रकार की स्थितियां आती हैं। कभी बीमारी सताती है, कभी कोई परीषह। पर सहनशील मुनि सबको सह लेता है और वह सर्वंसह बन जाता है। तुम भी उसी प्रकार सर्वंसह बनोगे। सम्यग दर्शन, सम्यक ज्ञान, सम्यक चारित्र की त्रिवेणी में निष्णात बनोगे। इसी आशा के साथ अनेक-अनेक शुभकामना।

वि. सं. 2032, चैत्र बदी 9 **आचार्य तुलसी**

सुजानगढ़

मुनि मुदितकुमार

गुरु के अनुशासन और अपने विवेक की छत्रछाया में तुम सदा मुदित-प्रमुदित रहो। जहां अनुशासन, वहां विवेक की जागरणा और जहां विवेक की जागरणा, वहां अनुशासन स्वयं फलित हो जाता है। ये दोनों परस्पर सापेक्ष हैं। जयाचार्य निर्वाण-शताब्दी के अनुशासन वर्ष में हम विविध प्रयोगों के द्वारा स्वात्मानुशासी बनें और विवेक-जागरण का जीवन जीएं। वीर-निर्वाण दिन के उपलक्ष में शुभाशंसा।

7-11-1983 **–आचार्य तुलसी**

जैन विश्व भारती, लाडनूं

वि. सं. 2037, कार्तिक कृष्णा अमावस्या

महाश्रमण शिष्य मुदित

सुखपृच्छा। तुम्हें महाप्रज्ञजी की अपूर्व सेवा का अवसर मिला है। अपना दायित्व जागरूकता से निभाना, उनकी केवल उपासना ही नहीं करनी है, तुम्हें महाप्रज्ञ के पास ज्ञान, ध्यान और कुछ मंत्र आदि विधियां प्राप्त करने का सलक्ष्य प्रयत्न करना चाहिए। ऐसा करना तुम्हारे भविष्य के लिए ही नहीं, संघहित में भी उपयोगी रहेगा।

तुम स्वयं के स्वास्थ्य की उपेक्षा अधिक करते हो, सावधानी रखनी चाहिए। तत्रस्थ सभी साधु-साध्वियों से सुखपृच्छा। महाप्रज्ञजी की छत्रछाया में सब सानंद रहें।

8-2-1997, जैन विश्व भारती, लाडनूं **–गणाधिपति तुलसी**

'16 फरवरी 1986। (युवाचार्य महाप्रज्ञ के अंतरंग सहयोगी के रूप में नियुक्ति के अवसर पर) इस घोषणा से मुनि मुदित सहज ही लोगों की साक्षात दृष्टि में आ गया। मुनि मुदित अनाकांक्ष, अनासक्त, सहज और अपनी धुन में मस्त रहने वाला साधु है। इसके बारे में मेरी धारणा है कि यह संघ के लिए भावी आशा का केंद्र बनेगा। इसे लेकर वातावरण बहुत शुभ रहा।'

दीक्षा जीवन की सर्वोत्तम उपलब्धि है। युवाचार्य महाश्रमण की दीक्षा एक विलक्षण योग व नियति के योग से बना है। महाश्रमण ने अपनी दीक्षा को प्राणवान बनाया है। उसने अपनी अंतर्चेतना से प्राण प्रतिष्ठा की है। सरदारशहर के आसपास किसी ग्राम में उनकी दीक्षा का दिवस मनाना जरूरी नहीं है। फिर भी मनाया जा रहा है। इसकी सार्थकता महाश्रमण व सरदारशहर के नागरिकों पर निर्भर है।

हम देखेंगे कि महाश्रमण सरदारशहर से कितने मुमुक्षु तैयार करते हैं। सरदारशहर के श्रावक कितने मुमुक्षु महाश्रमण को देते हैं। बस, यह कसौटी का समय है।

15 मई, 2000, राजलदेसर **आचार्य महाप्रज्ञ**

26 अगस्त 1990। (क्षमापना दिवस) 'मेरे सामने महाश्रमण मुदित उपस्थित है। एक छोटे-से बच्चे को आगे लाए हैं। इसे महाश्रमण बना दिया है। हम जो काम करते हैं, चिंतनपूर्वक करते हैं, परामर्शपूर्वक करते हैं, भावुकतावश किसी को आगे नहीं लाते। अगर किसी ने सोच लिया हो कि ऐसे ही अचानक लाकर खड़ा कर दिया है तो यह उसकी भूल है। मैंने जो कुछ किया है, वह पूरे विश्वास के साथ किया है, इरादतन किया है और निष्पक्षता से किया है। यह संकोचशील है। इसे जो दायित्व सौंपा गया है, उसके प्रति इसे पूरी तरह जागरूक रहना चाहिए। इसके प्रति मेरे मन में कोई विचार आया हो तो मैं खमतखामणा करता हूं।'

1 मार्च 1992 को महाश्रमण मुदित ने उपवास किया। वह प्रत्येक महीने की पहली तारीख उपवास, मौन और ध्यान में बिताता है। इसमें आध्यात्मिकता और अनासक्ति नैसर्गिक कूट-कूट कर भरी है। यश, ख्याति और नाम की कोई भूख नहीं है। सहजतामय जीवन जीता है। दायित्व का निर्वाह अच्छी तरह करता है। मुझे संतोष है कि महाश्रमण और महाश्रमणी दोनों अपने-अपने स्थान पर उपयुक्त हैं।

❑

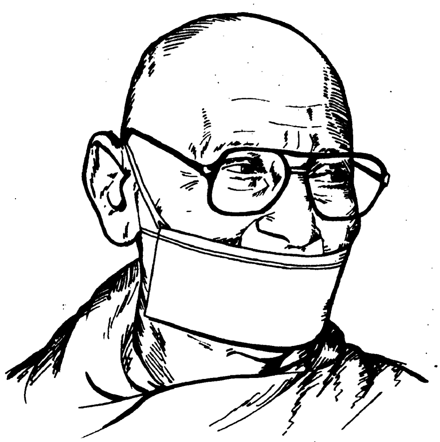

आचार्य महाप्रज्ञ से मिला आशीर्वाद

31 जनवरी 1998। (युवाचार्य अभिवंदन समारोह) 'महाश्रमण ने काफी कार्य संभाल लिया है। मैं समय आने पर जयाचार्य के स्वाध्यायी और ध्यानी रूप को धारण करना चाहता हूं। पूज्य गुरुदेव तुलसी ने मुझे कहा था—मेरी दृष्टि में यह मुदित ठीक है, योग्य है और तुम देख लो और कोई योग्य लगे तो...। मैंने कहा—आपकी और मेरी सोच अलग कैसे हो सकती है? और देखूं तो भी इसके अतिरिक्त योग्य मुझे कोई इस रूप में दिखाई नहीं देता, जिसे शासन का सूत्र संभला दिया जाए। शासन का सूत्र देने वाले की कसौटियां भी मैंने की, जिसमें ये खरे उतरे। मेरी दृष्टि में एक ही चिंतन था कि महाश्रमण कुछ नरम है। आचार्य का सबसे बड़ा सौभाग्य है—योग्य उत्तराधिकारी की संप्राप्ति। आज मुझे भी गुरुदेव श्री तुलसी जैसी ही प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है।'

19 फरवरी 1998। महाश्रमण में अध्यात्म है। यह हर कार्य में निर्जरा को देखते हैं। मेरी किसी भी प्रवृत्ति से कर्मबंध न हो, यह सतत चिंतन व दृष्टि रहती है। आध्यात्मिक विकास की कसौटी में महाश्रमण खरे उतरे हैं। युवाचार्य की पृष्ठभूमि पर ही पूज्य गुरुदेव ने महाश्रमण पद घोषित किया था। पूज्य गुरुदेवश्री तुलसी की यह दूरदर्शिता थी।

3 सितम्बर 1998। (युवाचार्य मनोनयन दिवस) 'एक दिन गुरुदेव तुलसी ने मुझसे कहा—'महाप्रज्ञजी! मेरी अवस्था इस समय चौहत्तर वर्ष की है और तुम भी लगभग अड़सठ वर्ष के हो गए हो। अब हमें भविष्य के लिए चिंतन करना चाहिए। हमने तेरापंथ को जिस स्थान पर पहुंचाया है, विकसित किया है, वह कायम रहे, इस पर गहराई से चिंतन करना है।'

फिर हमने चिंतनपूर्वक मुनि मुदित कुमार को महाश्रमण घोषित कर दिया। युवाचार्य का युवाचार्य तो नहीं हो सकता, इसलिए महाश्रमण के विशिष्ट दायित्व के साथ इन्हें संघ के सामने लाया गया। महाश्रमण का मनोनयन गुरुदेव के साथ गहन चिंतन का परिणाम है। उसके बाद महाश्रमण की प्रतिष्ठा बढ़ती गई।

मैंने महाश्रमण में विनम्रता, सिद्धांत और परंपरा ने प्रति समर्पण, सहिष्णुता, आचारनिष्ठा और मर्यादानिष्ठा के साथ स्वाध्याय, ध्यान और अध्ययन के प्रति विशेष रुचि देखी। तेरापंथ के आचार्यों की ये कसौटियां हैं। जो इन कसौटियों पर खरा उतरता है, वही तेरापंथ का आचार्य बन सकता है। मैंने इन कसौटियों पर इन्हें कसकर परखा और मुझे बहुत संतोष हुआ। महाश्रमण इन सारी कसौटियों पर खरे उतरे हैं। आचार्य पदाभिषेक समारोह में गुरुदेव ने इन्हें पत्र लिखकर दायित्व सौंपा और साथ

में लिख दिया कि आगे का सारा काम महाप्रज्ञजी को करना है।

हमारा सौभाग्य है कि अनुशासित, त्याग-तपस्या में विश्वास करने वाला, ज्ञान, दर्शन और चारित्र की संपदा से संपन्न और विकासशील संघ हमें मिला है। अब इसे और अधिक विकसित बनाने का दायित्व महाश्रमण पर है। इस पर इन्हें अब ज्यादा समय और ध्यान देना है। संघीय विकास की गति निरंतर आगे बढ़ती रहे।

इस अवसर पर मैं इन्हें आशीर्वाद के शब्दों में यह कहना चाहूंगा कि महाश्रमण की विनम्रता, सहिष्णुता, आचार और संयम की निष्ठा बनी रहे और विकसित होती जाए। साथ-साथ ये अपने स्वास्थ्य का भी बराबर ध्यान रखें। मेरी शुभाशंसा है कि गौरवशाली संघ का नेतृत्व करने की इनकी क्षमता उत्तरोत्तर बढ़ती जाए और विकास के प्रति निरंतर जागरूक रहते हुए धर्मसंघ की सेवा करें।

25 अप्रैल 1999 (युवाचार्य महाश्रमण का 38वां जन्मदिवस) 'अभी छोटे संतों ने महाश्रमण के जन्मदिन की बात कही। जिस दिन सुख की खोज प्रारंभ होती है, वही वास्तविक जन्मदिन होता है। महाश्रमण सुख की खोज में लगे हुए हैं। जिस दिन मुनि बने, उस दिन इनका नया जन्म हुआ। इसी तरह जब युवाचार्य बने, नया जन्म हो गया। जैसे-जैसे सुख की खोज आगे बढ़ती है, नया-नया जन्मदिन आता रहता है। मैं चाहता हूं कि महाश्रमण अपने जन्मदिन को नया-नया बनाते रहें।'

22 सितम्बर, 1999। (युवाचार्य मनोनयन दिवस) 'महाश्रमण के मनोनयन का तीसरा वर्ष शुरू हो रहा है। मुझे प्रसन्नता है कि मैंने जिन कसौटियों को सामने रख परखा' कसा उनमें महाश्रमण उत्तरोत्तर और अधिक योग्यता को प्राप्त करते जा रहे हैं। मुझे लगता है कि वे कसौटियां और अधिक सफल होती जा रही हैं। दो वर्ष का अनुभव मेरे सामने है। मैं इनको युवाचार्य बनाकर आह्लाद का अनुभव कर रहा हूं।

महाश्रमण का मुझे हर कार्य में पूर्ण सहयोग मिलता रहा है। गुरुदेव ने मुझे आचार्य बनाने से पहले मर्यादा महोत्सव की व्यवस्था का सारा दायित्व मुझ पर छोड़ दिया था। मैं महाश्रमण को साथ लेकर बैठता था और निर्णय लेकर गुरुदेव को निवेदन कर देता था। यह क्रम लगभग आठ-दस वर्षों से चल रहा था। लेकिन इन दो-तीन वर्षों से इनका अतिरिक्त सहयोग मिल रहा है। इन वर्षों में महाश्रमण ने मुझे निश्चिंत बना दिया है। कितने पत्र आते हैं, कितनी समस्याएं आती हैं, कितने संवाद आते हैं, मैं तो महाश्रमण को देकर निश्चिंत हो जाता हूं।

इनके कारण मैं अन्यान्य कार्य आसानी से कर लेता हूं। आगम, साहित्य आदि कार्य करने में मुझे पूरा समय मिल जाता है। इनका अब आगम कार्य में लगना है। दूसरे कार्यों में इन्हें बहुत शक्ति लगानी पड़ती है। मुझे कई बार लोग कहते हैं कि महाश्रमण बहुत व्यस्त रहते हैं। इनको इतनी मेहनत नहीं करनी चाहिए। मेरा यह जवाब होता है अभी तो काम करने का समय है, अभी नहीं करेंगे तो कब करेंगे। महाश्रमण ने बहुत सारा ऊपर का काम काफी हल्का कर दिया और मैं अपने आप में हलकेपन का अनुभव कर रहा हूं। इसलिए जो आवश्यक काम है वो मैं आसानी से कर पाता हूं। यह मेरा सौभाग्य है पहले गुरुदेव ने मुझे निश्चिंत कर रखा था, अब महाश्रमण ने। गुरु और शिष्य का, आचार्य और युवाचार्य का संबंध दो शरीर और एक आत्मा का संबंध होता है। यह कोई आज से नहीं, हमारा पुराना संबंध सदा चलता आ रहा है और बराबर चलता रहे और अधिक विकसित होता रहे। हम संघ को और ज्यादा शक्तिशाली बनाने में अपना समय नियोजित करें। हम पूरे संघ की शक्ति का उपयोग कर मानवता के लिए कुछ कल्याण का काम कर सके।

12 जनवरी 2000 (युवाचार्य महाश्रमण की सिरसा क्षेत्र की पृथक यात्रा की संपन्नता के अवसर पर) 'हमारे धर्मसंघ में एकमात्र आचार्य का नेतृत्व मान्य है। फिर भी सहयोग की अपेक्षा रहती है। आचार्य के लिए सबसे बड़ा सहारा होता है—युवाचार्य का। आचार्य से युवाचार्य को पृथक नहीं किया जा सकता। मैं गुरुदेव के साथ छाया बनकर रहा। 67 वर्ष तक लगातार साथ

रहा। गुरुदेव ने मेरे लिए जो लिखा, वह इन पर भी घटित होता है। मेरी दृष्टि के बिना ये कुछ नहीं करते। इनकी अंगुलि भी नहीं हिलती। जो जितना बड़ा होता है, वह उतना ही विनम्र होता है। जो जितना अहंकारी होता है, वह उतना ही छोटा होता है। विनम्रता एक बड़ी शक्ति है। महाश्रमण की विनम्रता और मृदुता निरंतर बढ़ रही है, यह भविष्य के लिए शुभ संकेत है। मैं चाहता हूं—मैं अपना ज्यादा समय दूसरे कामों में लगाऊं।

टोहाना मर्यादा-महोत्सव पर हमने सफलता के पांच सूत्रों की चर्चा की, उनमें एक सूत्र है 'श्रम करो, सफल बनो।' इसका एक उदाहरण महाश्रमण की श्रीगंगानगर, हनुमानगढ़ अंचल की यह यात्रा है। श्रम किया, सफलता मिली। किंतु अतिश्रम कहीं-कहीं थोड़ी समस्या पैदा करता है। इस बात पर आपको ध्यान देना है। मैं तो आठवां दशक पूरा कर रहा हूं। ऐसे में मुझसे ज्यादा आशा आप क्यों करते हैं। अब तो ज्यादा समय हमारा एकांतवास का होना चाहिए। गुरुदेव मुझसे कहते कि तुम अपना समय और कामों में मत लगाओ। जनसंपर्क से भी वे मुझे बार-बार रोकते। लक्ष्य यही था कि जो काम तुम्हें करना है वह तुम्हें ही करना है। वे काम शताब्दियों, सहस्राब्दियों तक संघ को मजबूत और चिरस्थाई बनाने के काम हैं। ऐसे काम में तुम्हें समय लगाना है। महाश्रमण साथ रहते हैं तो कुछ एकांत होता है और ये चले जाते हैं तो अनेकांत हो जाता है। मैंने तो निष्कर्ष निकाला है और शायद लिखा भी था कि जब-जब तुम्हारे मन में यह बात आती है कि आचार्यश्री को ज्यादा निर्जरा करानी है, उस समय तुम अलग विहार में चले जाते हो।

दिल्ली में श्रीगंगानगर के श्रावकों ने प्रार्थना की। उनकी प्रार्थना वर्षों से चल रही थी। प्रार्थना से भी ज्यादा हमारा यह चिंतन था कि उस क्षेत्र में जाना बहुत जरूरी है। किंतु मैं नहीं चाहता था कि महाश्रमण मुझसे अलग जाए और ये भी नहीं चाहते थे। दिल्ली में इन्हें एक बार पंद्रह दिनों के लिए भेजा। लौटकर आए तो बोले—'मेरी एक प्रार्थना है। आप मुझे एक वरदान दें कि आपसे अलग न रहना पड़े। तो दोनों में से कोई भी अलग रहना नहीं चाहता। मैंने एक बार लिखा—'महाश्रमण! तुम तो अभी युवा हो। तुम्हें तो शायद इतनी अपेक्षा नहीं लगती होगी, पर मैं तो अस्सी पार कर रहा हूं। मुझे तो अपेक्षा लगती है। इन्होंने सोचा ऐसा प्रसन्नता से कहा जाता है या अप्रसन्नता से? चिंता हो गई। फिर संवाद आया कि आपने यह कैसे लिखा? मैंने कहा—'मैंने खूब सोच-समझकर लिखा है। यहां बहुत अपेक्षा है, क्योंकि संघ का विस्तार हो जाने से काम इतना बढ़ गया है कि एक आचार्य इतना सारा काम कैसे करे? आज महाश्रमण आ गए। मेरा काम हलका हो गया। इक्यासीवां वर्ष शुरू हो रहा है। अब तो मुझे और एकांतवास की जरूरत है। अब लोगों से बात करना, उनकी शिकायतें सुनना, किसी को शाबासी देना, उलाहना देना, यह धंधा अब तुम संभालो। मैं अपने काम में लगता हूं।'

मैंने लिखा था कि महाश्रमण को मैं एक अध्यात्म पुरुष मानता हूं। अध्यात्म में रुचि है इनकी। इस दुनिया में वही व्यक्ति महान बन सकता है, जो अध्यात्म का जीवन जीता है। महानता के दो स्रोत हैं—एक स्वेच्छाकृत, दूसरा विनम्रता। थोपी हुई या औपचारिक विनम्रता नहीं। मुझे ऐसा योग्य उत्तराधिकारी मिला है, जिसकी विनम्रता पूरे संघ को सीखनी है। श्रीगंगानगर में दीक्षा का प्रसंग आया। मेरा आदेश तो था ही, फिर भी दीक्षा देने से पूर्व ये पट्ट से नीचे उतरे। मेरी दिशा की ओर उन्मुख होकर बद्धांजलि मौनभाव से स्वीकृति ली, फिर दीक्षा का कार्य संपन्न किया। अभी भी वैसे ही किया। खड़े होकर विनम्र भाव से समर्पण किया।

यात्रा अच्छी रही, ऐसा सभी कहते हैं। अब अगर मैं कहूं कि यात्रा बहुत अच्छी रही तो यह तो मेरी आत्मश्लाघा होगी, क्योंकि यात्रा तो मेरी थी।

हम सब प्रसन्न हैं। महाश्रमण कोरी बहिर्यात्रा करके नहीं आए हैं। बर्हियात्रा के साथ-साथ इनकी अंतर्यात्रा भी चलती रही है। मैं इसे बहुत महत्त्व देता हूं। हमारे पूरे धर्मसंघ को यह सीखना है कि कोरी बहिर्यात्रा ही न चले। उसके साथ-साथ हमारी अंतर्यात्रा भी चलती रहे। (साभार : 'महात्मा महाप्रज्ञ' से) ❐

आप तीर्थंकर स्वरूप हो

मुनि राजकरण

आचार्य महाश्रमण के बारे में जब सोचता हूं तो सुदूर अतीत में चला जाता हूं। एक नन्हे से मुनि (मुदित कुमार) के रूप में उन्होंने संघ की धवल परिधि में प्रवेश किया था। परिधि की परिक्रमा करते-करते कब वे अचानक केंद्रबिंदु बन गए, कुछ पता ही नहीं चला।

श्रीडूंगरगढ़ में पहली बार उनसे साक्षात हुआ, तब वे संघीय संबंध की अपेक्षा एक छोटे भाई थे। मेरी तत्त्वज्ञान में रुचि है सो उनसे तात्त्विक चर्चा की, कुछ बोल पूछे। जब सही उत्तर मिला तो उन्हीं बोलों को थोड़ा उलझाकर पूछा, किंतु वे उलझे नहीं, मानो उन्हें उलझना आता ही नहीं हो। तब से उनके प्रति हृदय में एक विशेष स्थान बन गया। प्रारंभ से ही उम्र की बजाय विद्वत्ता मेरे मन में आकर्षण का केंद्र रही है।

बहुत जल्द ही उनकी विशेषताओं ने आचार्य तुलसी का ध्यान भी अपनी ओर आकृष्ट करना शुरू कर दिया। तुलसी ने उन्हें अपनी कसौटी पर कसा। पारखी लोगों का कहना है–

कांच कथीर अधीर नर, कस्यां न उपजे प्रेम।
कसणी तो धीरां सहै, के हीरा के हेम।।

ये तो पता नहीं कि वे धीर थे, हीरा थे या फिर हेम थे, मगर उन्होंने कसणी को सहा और गुरु के मन में प्रेम उपजाया। परिणामस्वरूप गुरु तुलसी ने उन्हें ऊंचाइयों की ओर ले जाने वाली राह पकड़ा दी। वे अपने युवाचार्य का चयन कर चुके थे और संघ में युवाचार्य का युवाचार्य चुनने की कोई परंपरा नहीं थी। फलत: उन्हें आगे लाने के लिए महाश्रमण के पद का निर्माण किया गया। हालांकि तुलसी उन्हें काफी अधिकार दे चुके थे लेकिन वे मात्र गुरुओं की छाया के रूप में काम करते रहे। तुलसी-महाप्रज्ञ के रूप में कार्यरत इस शताब्दी की सफलतम जोड़ी के पृष्ठ भाग में उनके इंगित के अनुसार बिना विशेष स्वत्व का प्रदर्शन किए लगातार अपने कार्य में रत रहना ज्यादा सरल नहीं होता। जिस व्यक्ति में आंतरिक ठोसता होती है वही अधिकार पाकर भी इतना शांत रह सकता है।

तेरापंथ में अब तक जितने भी आचार्य हुए हैं उनका चयन मात्र उनके पूर्ववर्ती आचार्य द्वारा किया गया (सिवाय डालगणी के, जिनका चयन संतों के द्वारा किया गया था अथवा भिक्षु स्वामी जो कि तेरापंथ संघ के संस्थापक होने के नाते प्रमुख थे) लेकिन महाश्रमणजी की नियुक्ति में महाप्रज्ञ एवं तुलसी दोनों का हाथ रहा–चूंकि उनका प्रथम नियुक्तिपत्र आचार्य तुलसी के जीवन काल में ही लिख दिया गया था और न सिर्फ लिख दिया गया था अपितु तुलसी को निवेदित भी कर दिया गया था। जिन पर दो-दो गुरुओं का पूर्ण विश्वास रहा, उनकी महानता को किस मापक से मापा जा सकता है।

सफलता के शिखर पर आरोहण करना कठिन है लेकिन शिखर पर टिके रहना कठिनतर है। आमतौर पर व्यक्ति उच्चता का स्पर्श करने के बाद प्रशिक्षण और अभ्यास की निरंतरता नहीं रख पाता। अतः एक समय के बाद उसमें नवीनता का अभाव हो जाता है। महाश्रमणजी इस तथ्य के बारे में पूर्ण सजग हैं। इससे भी अधिक कहूं तो उनके मन में ज्ञान को लेकर एक तड़प है।

सन् 1997 के गंगाशहर चतुर्मास में कुछ संत मेरे पास निर्णयविंशिका पढ़ना चाहते थे। हम लोग समय का निर्णय कर रहे थे। किसी माध्यम से महाश्रमणजी को यह पता लग गया। उन्होंने तुरत कहा–मुझे भी निर्णयविंशिका पढ़नी है। मैं स्तब्ध रह गया उनके जिम्मे संघ की इतनी बड़ी जिम्मेदारियां हैं, इस व्यस्तता के बीच वे अध्ययन के लिए समय कैसे नियोजित कर पाएंगे? लेकिन उन्होंने न सिर्फ चतुर्मास काल में बल्कि मर्यादा महोत्सव के सर्वाधिक व्यस्तता वाले दौर में भी अध्ययन के लिए नियमित तौर पर समय निकाला। इसके पश्चात् भी हमारा जब कभी केंद्र में रहना होता है, महाश्रमणजी के साथ किसी न किसी रूप में ज्ञान-चर्चा का क्रम चलता रहा है।

आचार्य संघ में जहां सुव्यवस्था एवं अनुशासन बनाए रखते हैं वहीं गुरु के रूप में प्रत्येक साधु को साधना के पथ पर गतिमान बनाए रखना भी उनके प्राथमिक कर्तव्यों में आता है। इस रूप में पूज्य प्रवर की अपनी एक अलग ही कला है। हालांकि उनके आचार्य बनने के पश्चात् मात्र पांच दिन ही मुझे उनकी सन्निधि में रहने का अवसर मिला और वे पांच दिन भी इतनी व्यस्तता भरे थे कि कुछ क्षणों की सेवा भी अस्खलित रूप में हो पानी मुश्किल रही। लेकिन समय के इन छोटे-छोटे कतरों में भी उन्होंने जो गुरु-ज्ञान दिया, वह एक अनमोल निधि बन गया।

मेरी रुचि तत्त्व-ज्ञान में है तो तत्त्व को ही साधना सूत्र के रूप में प्रस्तुत करते हुए उन्होंने कहा–एक तरफ नाम कर्म का उदय है जो योग को संचालित करता है। दूसरी ओर मोहनीय कर्म का उदय है जो योग को अशुभ बनाता है। अपने आसन पर एक पूंजनी रखते हुए उन्होंने दोनों को पूंजनी के दोनों ओर स्थापित किया और कहा कि साधना का सार यही तो है कि दोनों को मिलने न दिया जाए। इतने सरल शब्दों में उन्होंने साधना को परिभाषित किया कि मैं गद्गद हो गया।

प्रत्येक साधु को उसी की भाषा और शैली में साधना के सूत्रों का ज्ञान देना विशिष्ट बौद्धिक बल या प्रज्ञा के सहारे ही संभव हो सकता है। शासन को समुद्र की उपमा से उपमित किया जाता है। यहां हर साधु साध्वी अपनी अलग पहचान रखता है, अलग बुद्धि-कौशल रखता है। पुराने संत संघ-संचालन को मतीरों का भारा बांधने जैसा कार्य कहते थे। लेकिन पूज्यप्रवर अपनी योग्यता और अनुभव के बलबूते इसे सहजतया संपादित कर लेते हैं।

आचार्य धर्मसंघ का सिरमौर होता है लेकिन हर आचार्य की अपनी एक विशिष्ट गुणवत्ता होती है जिसके कारण वह अन्य आचार्यों से अपनी अलग पहचान बनाता है। संघ का सौभाग्य है कि उसे युग के अनुरूप चलने वाले और युग की नब्ज को भांपने वाले आचार्य मिलते रहे हैं।

आचार्य तुलसी और महाप्रज्ञ का युग वैश्विक स्तर पर परिवर्तन का युग था और इस युग में बदलाव की सहवर्तिनी समस्याओं के समाधान के लिए नए-नए शोध एवं प्रयोग किए तथा अनेकानेक अवदानों से संघ को समृद्ध बनाया। वहीं आचार्य महाश्रमण अपने प्रबंधन कौशल से सभी अवदानों को सुव्यवस्थित तरीके से नियोजित कर रहे हैं कि समय और श्रम का जो बिखराव नजर आ रहा था, वह समाप्तप्राय हो गया है। इस समय आप नए कार्यक्रमों को लाने की बजाय पुराने कार्यक्रमों के प्रबंधन पर ही ध्यान केंद्रित कर रहे हैं। इन वर्षों में संघीय अपेक्षाओं की पूर्ति के लिए आपने कुछ ऐसे ठोस निर्णय लिए हैं जो आपकी कार्मिकी बुद्धि के साथ साथ औत्पत्तिकी बुद्धि या सीधे शब्दों में अनुभव की वैशिष्ट्यता को उजागर करते हैं।

उपरोक्त सभी विशेषताओं के पीछे जो दो महत्त्वपूर्ण गुण उत्प्रेरक का काम कर रहे हैं, वे हैं–परोपकार का भाव एवं श्रम चेतना। इन दोनों नैसर्गिक गुणों ने आपको महातपस्वी के सिंहासन पर आरूढ़ कर दिया। वैसे तो साधु का जीवन परोपकार के लिए समर्पित होता है और इसी दृष्टि से इस जीवन की तुलना वृक्ष, नदी आदि प्राकृतिक परोपकारी तत्त्वों से की जाती रही है। मगर आचार्यश्री के जीवन में परोपकार का भाव इतना प्रबल है कि वे अपनी शारीरिक क्षमता से भी अधिक श्रम करने के लिए तैयार हो जाते हैं। इसी का परिणाम है कि कभी-कभी विहार यात्रा के दौरान पहले निर्धारित दीर्घ विहार पथ के बावजूद मात्र किसी एक भक्त की भावना रखने हेतु पांच-छह किलोमीटर का अतिरिक्त विहार करने के लिए आप तैयार हो जाते हैं।

सन् 2013 की कच्छ यात्रा तो मानो श्रम का शिखर रूप ही साबित हुई है। इस भीषण गर्मी में 20-25 कि.मी. के नियमित विहार एवं आगामी मंजिलों में न्यूनतम सुविधा वाले मकानों में प्रवास। आगमों में आचार्य को महातपस्वी कहा गया है किंतु वह विशेषण संघ की सारणा-वारणा में लगने वाले श्रम की अपेक्षा से दिया गया है। पर पूज्यप्रवर तो दोनों दृष्टियों से महातप-महानिर्जरा कर रहे हैं।

सुदूर अतीत में जिन बालमुनि को प्रश्नों में उलझाने की असफल कोशिश मेरे द्वारा की गई थी, उन्हें संघ के सर्वेसर्वा के रूप में देखकर मैंने उस घटना का उल्लेख करते हुए आपसे इन शब्दों में क्षमा याचना की, 'उस समय छोटे भाई के रूप में आपसे चर्चा की थी।' महाश्रमणजी ने गरिमामय उत्तर दिया–मैं आज भी छोटा भाई हूं। मैं अप्रत्याशित सरलता से स्तब्ध था लेकिन तेरापंथ के संस्कार मुझे इस उत्तर को स्वीकारने की इजाजत नहीं दे सकते थे इसलिए मैंने कहा–अब तो आप तीर्थंकर के स्थानापन्न हो। तीर्थंकर स्वरूप हो। ❑

नयन युगल

मुनि जितेन्द्रकुमार

मनुष्य के शरीर का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग कौन-सा है? यह प्रश्न मेरे मस्तिष्क में बार-बार घूम रहा है। मैं इसका उत्तर पाने की प्रतीक्षा में हूं। विश्व के अनेक मनीषियों ने इसका उत्तर ढूंढ़ने का प्रयत्न किया है। उन्होंने अपने उत्तर को विविध प्रयोगों से सिद्ध भी किया है। किसी ने मस्तिष्क को सर्वश्रेष्ठ अंग माना, किसी ने हृदय को महत्त्वपूर्ण अंग मानकर स्थान दिया। किसी ने जिह्वा का महनीय स्थान बताया तो किसी ने आंख का। प्रत्येक मनीषी ने अपनी-अपनी बात को सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। उनके शोध में कहीं न कहीं सत्यांश अवश्य है। उस सत्यांश को पकड़कर ही परम सत्य को प्राप्त किया जा सकता है।

आचार्य महाश्रमण को जब-जब मैं निहारता हूं तो मेरे सम्मुख उसके नेत्रयुगल आकर्षण का केंद्रबिंदु बन जाते हैं। मेरी दृष्टि स्थिर होकर उनकी आंखों में झांकती है। मनुष्य-शरीर में आंख एक ऐसा अवयव है जो सारे व्यक्तित्व और कर्तृत्व का प्रतिनिधित्व करती है। जब मैंने उनकी आंखों को देखा तो मुझे लगा कि आचार्य महाश्रमण सागर से गंभीर, बालक सम ऋजु, ईश्वर भक्ति का प्रतिबिंब, विनम्रता की प्रतिमूर्ति, सूर्य समान तेजस्वी आदि गुणों से अलंकृत हैं। यद्यपि आंख वस्तु जगत का बोध कराती है, किंतु आंख उस सत्य का भी बोध कराती है, जिसको पाकर अतीन्द्रिय सत्य तक पहुंचा जा सकता है।

ये नयन मेरे लिए एक शोध का विषय बने। मैं प्रतिपल उनकी आंखों में झांकता हुआ तादात्म्य का अनुभव करता रहूं और अपने आपमें अद्वैत स्थापित करता रहूं। किसी कवि की यह पंक्तियां मेरा पथदर्शन करती हैं–

न जाने कौन सा जादू है
तुम्हारी इन सुंदर आंखों में।
यह अक्स इन आंखों
में दिखने को तरसता है।।

पंचाचार के अप्रमत्त साधक आचार्य महाश्रमण

शासनश्री मुनि राकेश कुमार

स्थानांग सूत्र में कहा गया है—पंचविहे आयारे पण्णत्ते-नाणायारे, दंसणायारे, चारित्तायारे, तवायारे, वीरियायारे-पांच प्रकार के आचार बताए गए हैं—ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार।

आध्यात्मिक विकास के लिए इन पांच आचारों की साधना आवश्यक है। ज्ञान से सत्य तत्त्व का बोध होता है। दर्शन से उसके प्रति श्रद्धा होती है। दर्शन और ज्ञान का गहरा संबंध है। सम्यग दर्शन से ही सम्यग ज्ञान का विकास हो सकता है। चारित्राचार का तात्पर्य है ज्ञात तत्त्व का आचरण करना। यह संवर धर्म का रूप है। इससे नए कर्मों का बंधन रुक जाता है। तपाचार की साधना से पूर्व संचित कर्मबंधनों का निर्जरण होता है। ज्ञान आदि चारों आचारों के छत्तीस भेद होते हैं। उनकी साधना-आराधना तथा सेवा-स्वाध्याय में अपनी शक्ति का नियोजन करना वीर्याचार है। आचार्यश्री महाश्रमणजी अप्रमत्त योगी हैं। उनके जीवन में पंचाचार की साधना का सजीव दर्शन होता है।

ज्ञानाचार की साधना

आचार्यश्री महाश्रमणजी प्रारंभ से ही ज्ञानाचार की साधना में जागरूक और संलग्न रहे हैं। उन्होंने मुमुक्षु अवस्था में भी पच्चीस बोल, तेरह द्वार, बासठिया, बावन बोल, गतागत, लघुदंडक तथा गमा आदि अनेक स्तोककृत् (थोकड़े) कंठस्थ कर लिये। इसके साथ उनका प्रारंभिक अर्थ भी हृदयंगम किया। आगम साहित्य के अध्ययन और अनुशीलन में उनकी विशेष रुचि है। उनके सान्निध्य में आगम बत्तीसी का पारायण हुआ तो अनेक स्वाध्यायशील साधुओं ने इसमें भाग लिया। तेरापंथ धर्मसंघ में जो आगम साहित्य के संपादन और विवेचन का कार्य हुआ एवं हो रहा है, उसमें उनका बहुमूल्य योगदान है। काल, विनय, बहुमान आदि ज्ञानाचार के सभी प्रकारों की आप जागरूकता

से आराधना करते हैं। आज समाज में ज्ञान संपदा का विविधमुखी विस्तार हो रहा है, पर उसके साथ विनय का संस्कार शिथिल हो रहा है। आचार्यश्री महाश्रमणजी के जीवन में विनयशीलता का नैसर्गिक संस्कार है। जिन व्यक्तियों से आपको स्वल्प ज्ञान भी प्राप्त हुआ है, उनके प्रति भी आपके मानस में कृतज्ञता का भाव रहता है।

आचार्यश्री महाश्रमण के दैनिक प्रवचन तत्त्वज्ञान से ओत-प्रोत होते हैं। श्रावक समाज में उस ज्ञान की वृद्धि हो, यह आपका सतत लक्ष्य रहता है। ज्ञान के विकास के लिए ध्रुवयोगी होना जरूरी है। आचार्यश्री तुलसी ने आपको अनेक प्रसंगों पर 'ध्रुवयोगी' विशेषण से संबोधित किया था। आपने थोड़े समय में ही विविध भाषाओं और अनेक विषयों का तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त कर लिया।

दर्शनाचार की साधना

आचार्यश्री महाश्रमणजी वीतराग वाणी के परम उपासक हैं। वीतरागता की साधना में आप अहर्निश प्रवर्धमान हैं। बाईस परीषहों में एक दर्शन परीषह है। कई वर्षों तक मेरे मन में यह जिज्ञासा रही कि दर्शन परीषह का क्या मतलब है? इसमें भूख-प्यास व सर्दी-गर्मी आदि की तरह कुछ भी सहन नहीं करना पड़ता। पर आज के युग में जहां नाना प्रकार के विचारों और मतवादों का तुमुलनाद सुनाई देता है वहां दर्शन परीषह की महत्ता और उपयोगिता सहज समझ में आ जाती है। बाहर के चमत्कारों के मायाजाल से जिसकी दृष्टि मूढ़ हो जाती है वह दर्शन परीषह को जीतने में तथा दर्शनाचार का पालन करने में सफल नहीं हो सकता। निःशंकित, निष्कांक्षित व निर्विचिकित्सा आदि दर्शनाचार के आठ प्रकारों को सम्यक प्रकार से समझने से ही दर्शनाचार की आराधना हो सकती है।

आगम वाणी के अनुसार पांचों आचारों में दर्शनाचार की साधना का महत्त्व सबसे अधिक है उत्तराध्ययन सूत्र में लिखा है—

नादंसणिस्स नाणं, नाणेण
विणा न हुंति चरणगुणा।
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो,
नत्थि अमोक्खस्स निव्वाणं।।

जो सम्यग दर्शन प्राप्त नहीं करता है उसका ज्ञान सम्यग नहीं हो सकता। सम्यग ज्ञान के बिना चारित्र के गुण का विकास नहीं हो सकता। उसके अभाव में मोक्ष और निर्वाण संभव नहीं है। दर्शनाचार की साधना से ही मिथ्यात्व आश्रव का निरोध तथा सम्यक्त्व संवर की प्राप्ति होती है। प्राचीन आचार्यों की भाषा में सम्यक्त्व के अभाव में चारित्र और तप की जितनी क्रियाएं हैं, वे बिना अंक के शून्य के समान है।

जिन लोगों की जिनवाणी और उस परंपरा के प्रति श्रद्धा दुर्बल है, आचार्यश्री महाश्रमणजी उन्हें स्थिर करने में सदा अपना श्रम नियोजित करते हैं। उनके परिवारों को सान्निध्य प्रदान कर उनके सम्यक दर्शन को पुष्ट करते हैं।

चारित्राचार की साधना

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह— ये पांच महाव्रत चारित्राचार के मूल आधार हैं। इनकी विशुद्ध साधना के लिए पांच समिति और तीन गुप्ति की आराधना का विधान है। इनको आठ प्रवचन माता कहा जाता है। दीक्षित होने के थोड़े समय बाद मुझे साध्वीप्रमुखाश्री लाडांजी ने अचानक पूछा—साधु के मां कितनी होती है? यह प्रश्न सुनकर एक बार मैं विस्मित-सा हो गया, पर मुझे तत्काल आचार्यश्री तुलसी द्वारा निर्मित गीतिका का एक पद्य याद आ गया। उसके आधार पर मैंने कहा—'पांच समिति और तीन गुप्ति—ये साधु की आठ माताएं हैं।' यह उत्तर सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुईं। आचार्यश्री महाश्रमणजी के हर व्यवहार में भाव क्रिया की साधना परिलक्षित होती है। वे अपने स्वीकृत आदर्शों के प्रति जागरूक और समर्पित हैं।

आचार्यश्री तुलसी ने कहा था–'साधु हो तो महाश्रमण जैसा हो'। उनके जीवन को देखकर निम्न संस्कृत श्लोक का स्मरण हो जाता है–

यथा चितं तथा वाचो,
यथा वाचस्तथा क्रिया।
धन्यास्ते त्रितये येषां,
विसंवादो न विद्यते।।

वे धन्य हैं जिनके जीवन में मन, वचन और शरीर की प्रवृत्ति में एकरूपता है। उसमें किसी प्रकार का विसंवाद नहीं है।

तपाचार की साधना

तप की साधना से पूर्व संचित कर्मों का निर्जरण होता है। तप के बारह भेद हैं। अपनी रुचि और शक्ति के अनुसार तप के किसी भी भेद की आराधना हो सकती है। बारह भेदों में छह भेद बाह्य हैं और छह आभ्यंतर है। तपाचार की साधना के लिए सुविधावाद का त्याग जरूरी है। आचार्यश्री महाश्रमणजी सहज तपस्वी हैं। उनकी कष्ट-सहिष्णुता अद्‌भुत है। एक बार उन्होंने सिवांची मालाणी (बाड़मेर जिला) क्षेत्र की यात्रा की। वह यात्रा बहुत सफल रही। उस क्षेत्र के लोग बहुत प्रसन्न और प्रभावित हुए। जब यात्रा संपन्न कर उन्होंने गुरुदेव के दर्शन किये तब वहां के प्रमुख श्रावकों ने यात्रा के सुखद समाचार सुनाए। आचार्यश्री तुलसी ने अपने प्रवचन में कहा–'इस सफल यात्रा के लिए मैं महाश्रमण को कुछ पुरस्कार देना चाहता हूं।' यह सुनते ही सारी परिषद् में नई जिज्ञासा उत्पन्न हो गई। सब लोग गुरुदेव की ओर देखने लगे। कुछ क्षणों पश्चात् जिज्ञासा का समाधान करते हुए गुरुदेव ने कहा–'इस अवसर पर मैं महाश्रमण को एक निर्देश देता हूं–यदि कोई भी तुम्हारे संबंध में सुविधावादी होने का आरोप लगाये तो तुम्हें खड़े-खड़े ध्यान करना होगा।' महाश्रमणजी ने गुरुदेव के इस आदेश को प्रसन्नता से स्वीकार किया, पर उन्हें एक बार भी इस रूप में ध्यान करने का अवसर नहीं मिला।

वीर्याचार की साधना

आचार्यश्री महाश्रमणजी परम पुरुषार्थी हैं। वे जिन शासन की सेवा में पूर्ण मनोयोग से संलग्न एवं समर्पित हैं। वे शक्तिसंपन्न और तेजः-संपन्न महापुरुष हैं। आपश्री आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के पांवों की बहुधा वैयावृत्य करते थे। एक बार आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने कहा–''महाश्रमण वैयावृत्य करता है तब मेरे पांवों में झनझनाहट होती है। यह प्राणवान व्यक्तित्व का महत्त्वपूर्ण लक्षण है।'

आचार्यश्री तुलसी और आचार्य श्री महाप्रज्ञजी के सान्निध्य और मार्गदर्शन में संघ की आंतरिक व्यवस्था से संबंधित दायित्वों को निभाना शुरू कर दिया था और वर्तमान में विशाल संघ का सारा भार आपके कंधों पर है। मर्यादा महोत्सव के समय जब सैकड़ों साधु-साध्वी एकत्रित होते हैं तब आपका श्रम अनिर्वचनीय होता है। संघ के सभी सदस्यों द्वारा गत वर्ष किये कार्यों का सिंहावलोकन तथा भविष्य के लिए दिशा-निर्देशन आप ही करते हैं। संघ के हर सदस्य की समस्याओं को ध्यान से सुनते हैं तथा उनका समुचित समाधान कर उन्हें आश्वस्त करते हैं। श्रावक समाज में धार्मिक और नैतिक संस्कारों को जागृत करने के लिए आप निरंतर प्रयत्नशील रहते हैं। सारे भारत से समय-समय पर सैकड़ों हजारों दर्शनार्थी आपके सान्निध्य में पहुंचते रहते हैं।

आप सबको आध्यात्मिक पाथेय प्रदान करते हैं तथा उनके जीवन में सत्संस्कारों का सिंचन करते हैं। यह आपकी व्यस्त दिनचर्या का नियमित कार्यक्रम है। तभी आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने अपने उत्तराधिकारी महाश्रमणजी की कष्ट-सहिष्णुता और श्रमनिष्ठा से प्रभावित होकर 'महातपस्वी' अलंकरण प्रदान किया था। इस संबोधन की घोषणा करते हुए उन्होंने कहा था–'महाश्रमण का आहार-संयम, इंद्रिय-संयम, श्रमशीलता और सहनशीलता अनुत्तर है। इसलिए महाश्रमण महातपस्वी हैं।' ❑

अभिनंदन सम्राट का नहीं : श्रम का

साध्वी शुभ्रयशा

एक बार एक राजा ने अपने वजीर से कहा–कुछ ऐसा लिखो जिसे पढ़कर मैं खुशी व गम में संतुलन रख सकूं। वजीर ने लिखा–'समय बीत जाएगा, पुरुषार्थ नया रंग लाएगा।' राजा के लिए लिखी गई वजीर की यह पंक्ति एक सकारात्मक संदेश देती है। वस्तुतः समय बलवान होता है और पुरुषार्थ आने वाले कल का भाग्यविधाता।

हम देखते हैं, न केवल प्रकृति में अपितु जीवन में भी उजाले के बाद अंधेरे और अंधेरे के बाद उजाले का क्रम गतिशील रहता है। समय पर किया गया पुरुषार्थ अंधेरे को उजाले में बदल देता है। कविवर रहीमदासजी ने कहा है–'समय लाभ सम लाभ नाहि'। समय का लाभ पुरुषार्थी व्यक्ति ही उठा सकता है। वह घड़ी की सूइयों पर सवार होकर आगे बढ़ता है। आचार्य महाश्रमण पौरुष के पर्याय हैं। वे समय की नब्ज को पहचान उसे मुट्ठी में बांधने के लिए संकल्पित हैं।

आज से बावन वर्ष पूर्व छह बजकर चौबीस मिनट पर दूगड़ परिवार के आंगन में एक अभिनव ज्योति का अवतरण हुआ, वह समय था सिंह राशि का। या यों कहना चाहिए कि उस समय में जन्म लेने के कारण बालक मोहन की राशि सिंह हुई और जातक पराक्रमशाली बना।

बालक मोहन की तब से लेकर अब तक की जीवन यात्रा सतत पुरुषार्थ की अकथ कहानी है। बचपन में मोहन के प्रिय खेल थे–कबड्डी व लुका-छिपी। शायद पराक्रम का प्रस्फोटन करने के लिए ही बालक ने इन खेलों का चयन किया होगा। बारह वर्ष की उम्र में सूर्योदय से 1.30 घंटे पहले उठना और लगभग साढ़े नौ बजे के बाद शयन करना। सेवा, स्वाध्याय, जप, गृह-कार्य, अध्यापन व लेखन में समय लगाना। इस प्रकार छोटी वय में समय का नियोजन कर सर्जनधर्मिता व अप्रमत्तता की दिशा में आरोहण करना श्रमशील जीवन की एक महत्त्वपूर्ण घटना है।

दीक्षा लेने के बाद पंचाचार की आराधना में आपने जो पुरुषार्थ किया, संभवतः उसके कारण गुरुदेव तुलसी व मुनि नथमलजी (आचार्य महाप्रज्ञ) के मन में आपके प्रति शुभ भविष्य का रेखाचित्र उभरने लगा। एक दिन में नाममाला के 30-35 श्लोक व मात्र 40 दिन में अर्थ सहित दसवेआलियं कंठस्थ करना भावी पीढ़ी के लिए आदर्श है। इसके साथ ही साथ प्राकृत, इंग्लिश और संस्कृत भाषा का ज्ञान

करना तथा उससे संबंधित साहित्य का पठन-पाठन भी आपकी रुचि का विषय था। ऐसा लगता है पंचाचार की आराधना के लिए आप अप्रमाद के पंख लगाकर ज्ञान गगन में विहरण के लिए कटिबद्ध हो गए।

महाश्रमण पद पर आते ही स्वतंत्र यात्राओं का दौर शुरू हो गया। अपने सुयोग्य शिष्य की विजय यात्रा पर प्रसन्न होकर गुरुदेव तुलसी ने कहा था–'यात्रा में महाश्रमण ने पसीना बहाया है, बहुत श्रम किया है। इसके श्रम को देखकर मैं गद्‌गद हूं।'

युवाचार्य बनने के बाद भी यात्राओं का क्रम जारी रहा। यात्रा के दौरान आपने धरती की माटी को केवल अपने चरण कमलों से सुवासित ही नहीं किया अपितु हर गांव में प्रवचन करते। कभी-कभी तो एक दिन में 7-8 कार्यक्रम हो जाते। भक्तों की कुटिया में पधारकर उनकी भावना को शतगुणित करते। एक दिन में घरों की स्पर्शना के आंकड़े शतक को भी पार कर जाते। अंबर, अवनि युवाचार्य महाश्रमण के जयनाद से एकाकार हो जाते। तत्पश्चात् पारिवारिक सेवा का क्रम चलता। यात्रा में कई बार आप लोगों की व्यक्तिगत समस्याओं से भी रूबरू होते। सार्वजनिक कार्यक्रमों में वोट, नोट और प्लोट से दूर रहकर लोगों को अपने जीवन की खोट भेंट करने के लिए प्रेरित करते, यात्रा की अनुगूंज सुनकर गुजरात के लोकप्रिय मुख्यमंत्री नरेन्द्र मोदी ने कहा–'महाश्रमणजी सुदीर्घ यात्रा के दरमियान जीवन में परिवर्तन की प्रेरणा दे रहे हैं। उनके विचारों को दूर-दूर के आदिवासी क्षेत्रों में भी प्रजा सुन रही है और श्रद्धा से उसको आचरण में भी उतार रही है।'

18 फरवरी, 2013 टापरा से प्रारंभ हुई कच्छ यात्रा में आचार्यप्रवर ने अनेक कीर्तिमान स्थापित किए। कच्छ के संदर्भ में एक विज्ञापन आता है–'कच्छ नहीं देखा, तो कुछ नहीं देखा।' उसी कच्छ के रण से अहिंसा यात्रा गुजर रही थी, जो रण भारत वर्ष में गर्मी के लिए प्रसिद्ध है। 12 अप्रैल, 2013 का वह दिन जब पूज्यप्रवर अंजार से विहार कर आदिश्वर होते हुए अष्टमंगल पधारे, उस दिन आपश्री का 23 कि.मी. का प्रलंब विहार हुआ। लगभग 12.20 मिनट दिन में आप गंतव्य स्थल पर पधारे। भरी दुपहरी में नभ का सूरज सबको संतप्त कर रहा था और धरती का सूरज सबके ताप का हरण कर रहा था। जब आप भिक्षु स्थल पर पधारे, उस समय आपश्री की शरीर संपदा पर श्रम की स्वेद बूंदें मोती की तरह सुशोभित हो रही थी। उस दृश्य को देख कितने लोगों के नयन सजल हो उठे।

आपश्री के शारीरिक व मानसिक श्रम की पराकाष्ठा ने जन-जन की भावना को सहस्रगुणित किया है। केवल तेरापंथ समाज ही नहीं, जैन-जैनेतर सभी लोगों ने तहेदिल से आपकी अगवानी की और इस बात को स्वीकार किया कि तेरापंथ धर्मसंघ के आचार्य महाश्रमणजी आज जितना श्रम कर रहे हैं, उतना श्रम क्या कोई अन्य करेगा? श्रम का खजाना आचार्य प्रवर को विरासत में मिला है। इस विरासत को आप दिन दुगुना और रात चौगुना बढ़ा रहे हैं। इसका एक बड़ा कारण है आपके जीवन में सिंह राशि का त्रिकोणात्मक योग। एक दृष्टि से आपको तीन बार सिंह राशि में जन्म लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

आपका पहला जन्म 13 मई, 1962 सरदारशहर की पुण्य धरा पर हुआ। आपश्री का दीक्षा (दूसरा जन्म) मई महीने में हुई तथा आपने नेतृत्व की कमान भी मई महीने में संभाली, जिसे आपका तीसरा जन्म कहा जा सकता है। मई महीने की राशि सिंह है। अत: ज्योतिषशास्त्र के अनुसार इस त्रिपुटी का सहज योग आपको पौरुष के हिमालय पर प्रतिष्ठित करता है। आपश्री की श्रमप्रधान जीवन-शैली से प्रभावित होकर गुरुदेव तुलसी ने कहा था–श्रम की बूंदों से महाश्रमण मोती निपजाते हैं। आचार्य महाप्रज्ञ के शब्दों में–'इनकी श्रमशीलता इतनी ज्यादा है कि शब्दों में कही नहीं जा सकती। इनको आज मैं महाश्रमिक महातपस्वी के रूप में देखता हूं। महाश्रमण का अभिनंदन सम्राट का नहीं, श्रम का अभिनंदन है।'

हम कल्पना करें वह शिष्य कितना सौभाग्यशाली होता है, जिसके श्रम का अभिनंदन गुरु स्वयं करते हैं। ❑

पल पल की पहरेदारी

साध्वी जिनप्रभा

समय गतिशील है, वह बिना किसी भेदभाव के हर व्यक्ति के द्वार पर दस्तक देता है। उसके कदमों की आहट धीमी अवश्य होती है, पर इतनी धीमी नहीं कि जिसे कोई सुन न सके। अधिकांश व्यक्ति इतनी गहरी नींद में होते हैं कि वे उसके कदमों की आहट सुनते ही नहीं। यदि कोई अलार्म घड़ी उन्हें उठने को प्रेरित करती है तो उन्हें खीज पैदा होती है। वे आलस्य की चद्दर ओढ़कर और भी गहरी नींद लेने का प्रयत्न करते हैं।

कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जिन्हें समय की आहट सुनाई तो देती है, पर उठने-उठने में वे इतनी देरी कर देते हैं कि तब तक समय अगले दरवाजे तक पहुंच जाता है। कुछ एक व्यक्ति इतने जागरूक होते हैं कि वे सोते ही नहीं। बड़ी मुस्तैदी के साथ वे समय की दस्तक की प्रतीक्षा करते रहते हैं। ज्यों ही समय उनके द्वार पर दस्तक देता है, वे उसे मुट्ठी में कैद कर लेते हैं। ऐसे व्यक्ति ही महापुरुषों की महनीय कतार में खड़े नजर आते हैं।

उन्हीं महापुरुषों की श्रृंखला में एक स्वर्णिम अभिधान है–आचार्य महाश्रमण। उन्हें टाइम मैनेजमेंट गुरु के रूप में जाना जा सकता है। 'समय किसी का दास नहीं बनता' यह कथ्य औरों पर लागू हो सकता है पर आचार्य महाश्रमण पर नहीं । उन्होंने तो जैसे समय को अपना दास ही बना लिया है। कहा तो जाता है कि मुट्ठी में कैद हुई रेत, वर्तमान का क्षण तथा पानी कब चुपके से फिसल जाते हैं, पता ही नहीं चलता, पर मैंने देखा है–आचार्य महाश्रमण ने समय के हर पल पर अप्रमत्तता का ऐसा पहरा बिठा रखा है कि एक भी पल उनकी अनुमति के बिना या उनकी दृष्टि से ओझल होकर इधर-उधर हो आगे जा नहीं सकता।

एक विचारक ने लिखा है–धरती को मापना और आकाश की ऊंचाई को छूना आसान है, पर समय को पहचानना और पहचान कर उसका उपयोग करना कठिन है। आचार्य महाश्रमण को मैं इसका अपवाद मानती हूं। वे समय को पहचानने और उसका उपयोग करने की कला में दक्ष हैं। यह दक्षता उन्होंने आचार्य बनकर ही हासिल नहीं की। बचपन से ही वे समय को सहेज कर रखने की कला में सिद्धहस्त थे।

मैं एक बार आचार्य महाश्रमण की जीवनी पढ़ रही थी। उसमें उनके द्वारा बचपन में बनाई गई दिनचर्या पर मेरा ध्यान केंद्रित हुआ। वह दिनचर्या भी उस समय की है जब उनकी उम्र रही होगी कोई 10-11 साल की। बालपन में जहां अधिकांश बच्चे अपना होश-हवास भी नहीं संभाल पाते हैं, वहां आचार्य महाश्रमण ने उस समय ही अपनी सुव्यवस्थित दिनचर्या बना ली। उनकी समय-सारिणी सूर्योदय से लगभग डेढ़ घंटे पहले शुरू होती है और प्रहर रात्रि बीतने के बाद संपन्न होती है। कब सोना, कब उठना, कब जप, ध्यान स्वाध्याय आदि करना, कब प्रतिक्रमण करना, कब संत-दर्शन करने जाना, कब गृहकार्य करना आदि सारी दैनिक चर्या निर्धारित थी।

इतना ही नहीं, दिनचर्या के अंत में उन्होंने लिखा कि यदि एक मिनट का इस दिनचर्या के किसी विषय में अतिक्रमण हुआ हो तो मैं प्रायश्चित्त करूंगा। जिस व्यक्ति की दिनचर्या व जीवनशैली इतनी व्यवस्थित व समयबद्ध होती है वह व्यक्ति अनवरत सफलता के शिखरों पर आरोहण करता रहे, इसमें आश्चर्य की क्या बात है?

वर्तमान में आचार्यश्री सैकड़ों साधु-साध्वियों एवं हजारों-लाखों गृहस्थ श्रावकों का नेतृत्व करते हुए भी प्रतिदिन अनेक कार्यों को अंजाम देते हैं। यह उनकी व्यवस्थित दिनचर्या का ही परिणाम है। यह प्रसंग मैंने पढ़ा तो है ही, किंतु आचार्यवर को समयबद्धता के साथ कार्य करते हुए देखा भी है।

एक मिनट अधिक नहीं

जसोल चतुर्मास में मध्याह्न के समय आचार्यश्री प्राय: आगम संपादन का गुरुतर कार्य करवाते थे। इस पवित्र श्रुतोपासना में हम कुछ साध्वियों को जुड़ने का अवसर प्राप्त हुआ। आचार्यप्रवर के पास मैं राजप्रश्नीय आगम का अनुवाद दिखाने के लिए जाती थी। मुझे समय दिया गया था 1.35 से 2.05 तक दिन का। इसके बाद 2.06 से 2.36 तक दिन का समय मुख्य नियोजिकाजी आदि को दशाश्रुतस्कंध का काम करने के लिए दिया गया। मैं आचार्यप्रवर के पास ठीक समय पर पहुंचने का प्रयास करती, पर कभी-कभी टाइम का अतिक्रमण भी हो जाता। किंतु आचार्यप्रवर यथासमय प्राय: कार्य करने की मुद्रा में विराज जाते। ज्यों ही घड़ी में दिन के 2.05 बजते तत्काल आचार्यश्री पुस्तक नीचे रख देते। फिर भले कोई वाक्य बीच में हो या किसी शब्द का अर्थ देखना हो। अगले ही क्षण दूसरी साध्वियां, जो वहां पहले से उपस्थित होतीं, आचार्यप्रवर के पास उनका काम शुरू हो जाता।

कभी चालू सूत्र पूरा होने के बाद एक-दो मिनट का समय अवशेष रहता तो मैं सोचती—शायद अब अगला सूत्र शुरू नहीं होगा, क्योंकि समय समाप्ति के करीब है। पर आचार्यश्री की ओर से 'ना' नहीं होती तो अगला सूत्र शुरू कर देते। विमर्श की दृष्टि से किसी शब्द के लिए भगवती भाष्य, ज्ञाता या कोई कोश आदि देखना होता तो पास की लाइब्रेरी से हम पुस्तकें निकालकर लाते, उनके पृष्ठ पलटते ही नहीं कि आचार्यप्रवर से समय संपन्नता की सूचना मिल जाती।

उक्त प्रसंग का भावार्थ यह है कि सामान्यतया हमारे पास 10-15 मिनट का समय भी होता है तब बहुत बार यह सोच लेते हैं कि अब क्या काम करेंगे? 10 मिनट ही तो समय है। आचार्यश्री की दृष्टि में एक मिनट के समय का भी मूल्य है, जिस काम के लिए जो समय निर्धारित है, वह समय उसी काम के लिए समर्पित रखते हैं।

एक दिन प्रवचन में 'समय का हो समुचित अंकन और विनियोजन' इस विषय पर आचार्यप्रवर ने फरमाया—'हमारे जीवन में अलग-अलग चीजों का अलग-अलग मूल्य होता है। उसमें समय एक ऐसा तत्त्व है, जिसका अधिक मूल्य है अथवा यों कहें कि यह अमूल्य होता है। समय का वैशिष्ट्य यह है कि यह फ्री में मिलता है, सबको समान रूप से मिलता है। जो मुफ्त में मिलता है, कई बार उसका मूल्य कम भी आंका जाता है। समय प्रकृति का वरदान है। समय दान करना भी एक दान है। किसी के पास धन तो नहीं है, पर उसके पास कोई आ गया तो उसे मार्गदर्शन के रूप में समय देना भी एक प्रकार का दान है। समय को बर्बाद नहीं करना चाहिए। उसका समुचित उपयोग करना चाहिए। समय को बर्बाद करने वाला स्वयं को बर्बाद करता है और समय का समुचित उपयोग करने वाला स्वयं को सम्यग बना लेता है। स्वयं को अच्छा बनाने का सीधा और सरल उपाय है समय का सदुपयोग करना।'

निस्संदेह आचार्यप्रवर का समय प्रबंधन हमें हर क्षण समय का मूल्यांकन करने को प्रेरित कर रहा है। आचार्यश्री की उपासना में आने वाला कोई व्यक्ति निराश न लौटे, इसके लिए आचार्यश्री ने एक मुनिजी को पार्श्वस्थायी के रूप में नियुक्त किया है। वे दर्शनार्थ, उपासनार्थ आने वालों को आचार्यश्री की उपासना का निर्धारित समय बता देते हैं। ठीक उस समय वह व्यक्ति आचार्यश्री से संबल प्राप्त कर कृतकृत्य बन जाता है।

पूज्य आचार्यप्रवर का समय अनुशासन धर्मसंघ के लिए प्रेरणा बन गया है। समय प्रबंधन स्वयं का प्रबंधन है। आचार्यवर के इस उपक्रम को संघ का हर सदस्य प्रायोगिक रूप दे, यह काम्य है। ❑

अभिनंदन सत्य के मानसरोवर का

साध्वी संघमित्रा

तेरापंथ धर्मसंघ उदितोदित धर्मसंघ है। नित नए प्रगति के पायदानों पर आरोहण करता हुआ यह अनुशासित मर्यादित धर्मसंघ उत्तरोत्तर प्रवर्द्धमान है। यशस्वी, वर्चस्वी, महामनस्वी प्रभावी आचार्यों की कुशल अनुशासना में इस धर्मसंघ ने विकास के अनछुए शिखरों को छुआ है। कई नए आयाम उद्घाटित किये हैं।

वर्तमान में महातपस्वी, संत शिरोमणि, सुधा सिंधु, सरस्वती के वरदपुत्र, जैन जगत के जाज्वल्यमान नक्षत्र, पौरुष के धनी आचार्यश्री महाश्रमण का सक्षम, सबल, सुखद, स्वस्थ, प्रशस्त नेतृत्व पाकर समूचा धर्मसंघ आत्मगौरव से अभिभूत है।

आचार्य महाश्रमण सुगुरुद्वय की नजरों से तराशे हुए अनुपम रत्न हैं। प्रज्ञा पारावार आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के आप परम यशस्वी उत्तराधिकारी हैं। श्रमण संस्कृति के सबल सूत्रधार और संतता के शिखर पुरुष हैं। पूर्वाचार्यों से विरासत में प्राप्त अनुभवों का आपके पास अकूत खजाना है। आचार्यश्री महाश्रमणजी व्यक्ति नहीं, संस्कृति हैं, इतिहास हैं, दर्शन हैं, विज्ञान हैं। आपका जीवन अनेक दुर्लभ क्षमताओं का दस्तावेज है। आपका व्यक्तित्व 'सत्यं-शिवं-सुंदरम्' की अभिव्यक्ति है।

आपका उपशम भाव विलक्षण है। आपकी मधुर मुस्कान, सौम्य मुखमुद्रा, अमियदृष्टि प्रथम दर्शन में ही दर्शक को बांध लेती है। आपके आभामंडल की छांव में बैठने वाला व्यक्ति गहरी आत्मशांति की अनुभूति करता है। आपके वात्सल्य बरसाते नयन, आशीर्वाद में उठे हाथ दूरस्थ खड़े भक्त को भी आनंद से आप्लावित कर देते हैं। आपकी वाणी अमृत का निर्झर है और आपका साहित्य अमृत का घर है। आपकी अध्यात्म-निष्ठा, आगम-निष्ठा, आज्ञा-निष्ठा, आचार-निष्ठा, गुरु-निष्ठा, संघ-निष्ठा, श्रम-निष्ठा, विनय-निष्ठा बेमिसाल नजीर है।

तलहटी से शिखर तक की आपकी यात्रा विनय-विवेक की, श्रद्धा समर्पण की, त्याग तप की यात्रा है।

आपका जीवन अनेकांत का अनुपमेय उदाहरण है। विनम्र होते हुए भी आप आत्मतेज से संपन्न हैं। आपकी संयम साधना, श्रुताराधना और समत्व अकंप दीपशिखा की भांति दीप्तिमान है। साहस और शौर्य आपकी परिक्रमा करता है। आपके कर्तृत्व की ऊंचाइयों ने विकास के कई कीर्ति स्तंभ स्थापित किए हैं। धर्मसंघ को नई चमक दी है। आपने युगीन समस्याओं की तह तक पहुंचकर जन चेतना को झकझोरा है। नशा जैसी जानलेवा आदतों से ग्रसित न जाने कितने व्यक्तियों को स्वस्थ जीवन जीने की कला सिखाई है।

आप करुणा के निधान हैं। आपने जनमानस में करुणा की धारा बहाई है एवं अनुकंपा की चेतना को जगाया है। 'देवता की पूजा करो या न करो, ईमानदारी की पूजा अवश्य करो' आपके इन क्रांत विचारों ने मानव को चिंतन की नई दिशा प्रदान की है।

आप महान यायावर हैं। चाहे धूप हो या छांव, नगर हो या गांव, आपके फौलादी गतिमान चरण जनकल्याण हेतु रेतीली, कंकरीली, पथरीली धरती, कंटकाकीर्ण घुमावदार पथों को पार कर निरंतर आगे से आगे बढ़ते रहे हैं। कदम-कदम पर सफलता ने आपके चरण चूमे हैं। मेवाड़, मारवाड़ की संघ प्रभावी जनकल्याणी यात्रा के बाद कच्छ (गुजरात) क्षेत्र की अति श्रमसाध्य यात्रा ने धर्मसंघ की प्रभावना में चार चांद जड़ दिए। आचार्यप्रवर द्वारा प्रलंबमान यात्राएं भी घोषित हैं, जो धर्मसंघ के शुभ भविष्य को परिलक्षित करती हैं। कवि की निम्न पंक्तियां आप पर चरितार्थ भी हो रही हैं–

अभी तो पर खुले हैं, लंबी उड़ान बाकी है,
अभी चांद सितारों को ही मापा है, अनंत आसमान बाकी है।।

आप वाणी के जादूगर हैं। आपकी सुधास्रावी, संतापहारी, जनकल्याणी वाणी को सुनकर जनता झूम उठी। आपकी सर्वधर्म सद्भावना के समक्ष विभिन्न मतावलंबी दिग्गज विद्वान् भी आंतरिक प्रसन्नता से सराबोर हो गए। आपके पुरुषार्थ की गाथा कंठ-कंठ से मुखरित हुई। वर्धापना के इन क्षणों में हमारी मंगल कामना है–

हे अनंत आलोक के स्वामी आचार्य महाश्रमण! महासूर्य की तरह इस धरा पर चमको और अपनी दिव्य रश्मियों को क्षितिज के उस पार तक बिखेर दो। हे अनोखे भागीरथ! गणाधिपति पूज्यश्री गुरुदेव तुलसी के उर्वर मस्तिष्क से उतरी अणुव्रत सुरसरिता को जन-जन के अंतःस्तल तक वेग से प्रवाहित कर दो। हे पीयूष पयोधर! पुष्करावर्तक मेघ की तरह सहस्र-सहस्र धाराओं में बरसो। युग युग से प्यासे कंठों को तृप्त कर दो।

अमृत पुरुष तुम्हारी वाणी, युग का अनुपम संबल।
रहो निरामय हृदय देवता, मिले मनुजता को बल।।
बंद खिड़किया खोल दो, युग को मिले प्रकाश।
नए शिखर स्थापित करो, पाए संघ विकास।।
अंबर को छू जाए, इतनी ऊंची भरो उड़ान।
जयकारों से गूंजे धरती, जाग उठे इंसान।।

मानवता के सजग प्रहरी, नैतिक मूल्यों के प्राण प्रतिष्ठापक, परमार्थ चेतना के धनी, आगम धर, सत्यान्वेषक आपकी यशोकीर्ति का परचम दशो-दिशाओं में अनवरत लहराता रहे। आपका प्रत्येक कदम प्रकाश स्तंभ बने।

प्रबंधन करने की आपकी क्षमता और अचंभित करने वाले, सटीक, प्रभावशाली और दूरदृष्टि का आभास देने वाले आपके निर्णयों ने एक बार फिर यह साबित कर दिया कि तेरापंथ के आचार्य जिन्हें अपने उत्तराधिकारी के रूप में चुनते हैं, वे हीरा ही होते हैं। एक सामान्य व्यक्ति जहां सोचना बंद करता है वहां से हमारे आचार्य सोचना प्रारंभ करते हैं। जहां सामान्य नजरें कुछ नहीं ढूंढ़ पाती वहां आचार्य पूरी स्वर्ण-खान ही खोज निकालते हैं। ❑

कैसे करें वर्धापित का वर्धापन

साध्वी मंगलप्रज्ञा

सौभाग्यशाली है तेरापंथ धर्मसंघ, जिसे अपने उद्भवकाल से लेकर अब तक निरंतर योग्य आचार्यों की अनुशासना प्राप्त होती रही है। आचार्य भिक्षु की संविधानात्मक गंभीर सोच ने तेरापंथ को एक आचार्य का नेतृत्व प्रदान कर इसे प्राणवान बनाया है। एक आचार्य के नेतृत्व के कारण ही यह धर्मसंघ अन्य धर्मसंघों से अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाए हुए है। संख्यात्मक दृष्टि से लघु होते हुए भी अपनी गुणात्मक शक्ति के कारण यह विराटता को प्राप्त है।

समय-समय पर तेरापंथ को युगानुकूल तेजस्वी, ओजस्वी आचार्यों की उपलब्धि ने उसके विकास में चार चांद लगा दिए हैं। वर्तमान में आचार्य महाश्रमणजी की अनुशासना में यह धर्मसंघ विकास के पथ पर आरोहण कर रहा है। आचार्य तुलसी एवं आचार्य महाप्रज्ञ–ये दो युगप्रधान आचार्य लगातार तेरापंथ को प्राप्त हुए। इन दोनों महाप्रतापी आचार्यों की देख-रेख में जिनका संरक्षण-संवर्धन हुआ, ऐसे पुण्य के पुंज आचार्य महाश्रमण को प्राप्त कर समूचा धर्मसंघ गौरवान्वित एवं महिमामंडित है। पुण्यश्लोक आचार्य महाश्रमण की अमृतमय अभिवंदना करके आंतरिक तोष की अनुभूति होती है। आचार्य महाश्रमण अपने गुण गौरव से स्वयं वर्धापित हैं। उनके वर्धापन का प्रयत्न मात्र अपने भक्तिभाव की अभिव्यंजना मात्र है।

जब मैं मुनि अवस्था के मुनि मुदित को देखती हूं तो अतीत स्मृति पटल पर उभर आता है। अपने आचार-व्यवहार की प्रौढ़ता से किस प्रकार उन्होंने छोटीवय में ही अपने गुरु का विश्वास अर्जित कर लिया था। घटना प्रसंग हमारे मुमुक्षुकाल का है। पारमार्थिक शिक्षण संस्था में मुख्य रूप से मुमुक्षु बहिनों की अध्ययन की व्यवस्था रहती है। संस्कृत, प्राकृत, दर्शन, अंग्रेजी आदि विभिन्न विषयों का पठन-पाठन का क्रम मुमुक्षु बहिनों के लिए चलता रहता है। तद्विषयक प्राध्यापक उस विषय का अध्यापन करवाते हैं।

संस्कृत व्याकरण में कालू-कौमुदी का अध्यापन होता था। हमारी (मुमुक्षु बहिनों की) परीक्षा नजदीक आ रही थी, पर उस वर्ष कुछ कारणों से कालू-कौमुदी का कोर्स अवशिष्ट रह गया था। संस्था के व्यवस्थापकों के सामने यह बात रखी गई। पूज्य गुरुदेवश्री तुलसी उस समय संभवत: नाथद्वारा (मेवाड़) में विराज रहे थे। संस्था के व्यवस्थापकों ने पूज्यवर से निवेदन किया कि मुमुक्षु बहिनों के संस्कृत व्याकरण के अध्यापन की व्यवस्था नहीं हो पा रही है, व्यवस्था की जाए। पूज्यश्री ने उस समय फरमाया–जैन विश्व भारती में अभी मुनि मुदित हैं, वह मुमुक्षु बहिनों को व्याकरण का अध्यापन करवा देगा। सूचना मुनिप्रवर तक पहुंची। गुरु आदेशानुसार आप स्वयं संस्था में संस्कृत व्याकरण का अध्यापन कराने के लिए पधारते। वह संभवत: स्नातक तृतीय वर्ष की कक्षा थी। उस कक्षा में मैं भी थी और मुझे भी आपश्री का विद्यार्थी बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

मैं इस घटना को इस संदर्भ में विश्लेषित करना चाह रही हूं कि उस समय मुनि मुदित और हम मुमुक्षु बहिनें समवयस्क थे। एक हमउम्र मुनि का मुमुक्षु बहिनों को अध्यापन करवाने के लिए गुरु द्वारा निर्देशित होना एक विशेष बात थी। उस छोटी उम्र में भी आपने अपने गुरु का कितना विश्वास अर्जित कर लिया था। यह शुभ भविष्य की सूचना थी।

आपका इंद्रिय संयम उत्कृष्ट था। मुझे आज भी याद है कि अध्यापन के दौरान आपका व्यवहार कितना संयत होता था। विषय अध्यापन के अतिरिक्त कभी कोई अन्य बात नहीं होती थी। इस वैशिष्ट्य के कारण आपने आचार्यश्री तुलसी का इतना विश्वास अर्जित कर लिया था कि गुरु ने स्वयं मुनियों की परिषद में आपको आदर्श रूप में प्रस्तुत किया। आपकी इस उत्कृष्ट संयम साधना ने आपको तेरापंथ के सर्वोच्च शिखर पर पहुंचा दिया।

आपकी श्रुत साधना भी अनुकरणीय रही है और उसने विद्वानों के हृदय में एक स्थान बनाया है। मेरी स्मृति में उभर रहा है वह घटना प्रसंग, जब जैन विश्व भारती के प्रांगण में 'राष्ट्रीय जैन विद्या सेमिनार' का आयोजन था। पूज्य गुरुदेव श्री तुलसी एवं युवाचार्यश्री महाप्रज्ञजी का सान्निध्य उस संगोष्ठी को प्राप्त था। उस सेमिनार में पूरे देश से आए अनेक जैन विद्वान सहभागिता कर रहे थे। अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त प्रोफेसर नथमल टाटिया आदि अनेक विद्वान उस संगोष्ठी में उपस्थित थे। गोष्ठी का दोपहर का एक सत्र वर्धमान ग्रंथागार में आयोजित था। उस सत्र की अध्यक्षता संभवत: वाराणसी से आए प्रोफेसर जैन कर रहे थे। उस सत्र में आपश्री ने भी अपना शोध पत्र प्रस्तुत किया। आपका शोध पत्र संक्षिप्त था। सत्राध्यक्ष संगोष्ठी के नियमानुसार सत्र में पठित शोधपत्रों पर अपनी टिप्पणी प्रस्तुत करते हैं, अध्यक्ष महोदय ने टिप्पणी के क्रम में आपके पत्र पर कहा–मुनिश्री ने अपना संक्षिप्त-सा पत्र प्रस्तुत किया, उसके बारे में विशेष कुछ वक्तव्य नहीं है। चूंकि संगोष्ठी में अनेक विद्वान एवं श्रोता उपस्थित थे। प्रोफेसर टांटिया भी वहां थे। उन्होंने वक्तव्य के मध्य ही अध्यक्ष की टिप्पणी पर कहा–क्या बड़ा होने से ही कोई शोध पत्र महत्त्वपूर्ण होता है? आधे पृष्ठ के लेख पर तो व्यक्तियों को नोबल पुरस्कार मिले हैं। मुनिजी का शोध पत्र भी उसी प्रकार का है। संक्षिप्त होते हुए भी अपने विषय के संदर्भ में अत्यंत गांभीर्ययुक्त है। लगता है आपने उस गांभीर्य को पकड़ा ही नहीं है। डॉ. टाटिया ने तत्कालीन मुनिश्री मुदितकुमारजी के पेपर की गंभीरता को उद्धरणों सहित प्रस्तुत कर सभा में मुनिश्री की बहुश्रुतता को प्रकट किया एवं अध्यक्ष ने भी बड़े ही विनम्रभाव से टांटियाजी के उस वक्तव्य की सत्यता को स्वीकार करते हुए अपनी टिप्पणी के प्रति खेद व्यक्त किया। हमने देखा, प्रोफेसर टांटिया जैसे दर्शन क्षेत्र के सुविख्यात विद्वान आपकी विद्वत्ता से कितने प्रभावित थे।

आप द्वारा किया गया ग्रंथों का गंभीर अध्ययन सबके लिए एक विशेष प्रेरणा है। आपकी दर्शन-भक्ति, ज्ञान-शक्ति एवं चारित्र के प्रति अनुरक्ति साधना पथ पर गतिशील साधक को एक अभिनव प्रेरणा प्रदान कर रही है। आपका जीवन ही साधक के लिए जीवन्त प्रेरणा है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र की उत्कृष्ट आराधना आपके संयमी जीवन की मुखर सुषमा है।

स्थानांगसूत्र में गणधारण के योग्य व्यक्ति की योग्यता का उल्लेख करते हुए कहा गया कि छह स्थानों से संपन्न अनगार गण को धारण करने में समर्थ होता है–'छहिं ठाणेहिं संपण्णे अणगारे अरिहति गणं धारित्तएं तं जहा–सड्ढी पुरिसजाते, सच्चे पुरिसजाते, मेहावी पुरिसजाते, बहुस्सुते पुरिसजाते, सत्तिमं, अप्पाधिकरणे।'

जो अनगार श्रद्धावान, सत्यवादी, मेधावी, बहुश्रुत, शक्तिमान एवं अल्पाधिकरण होता है वही गण का नेतृत्व करने के योग्य होता है। आगम प्रदत्त आचार्य की कसौटियों के संदर्भ में आपका व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व उस पर खरा उतरता है।

श्रद्धावान पुरुष ही आचारनिष्ठ एवं मर्यादानिष्ठ हो सकता है। जो स्वयं आचारवान एवं मर्यादानिष्ठ नहीं होता वह दूसरों को आचार एवं मर्यादा में स्थापित नहीं कर सकता। आचार्य महाश्रमणजी का जीवन श्रद्धा का उत्कृष्ट उदाहरण है। आपकी जिनवचनों के प्रति अटूट श्रद्धा पग-पग पर आपके जीवन में दृष्टिगोचर है। शास्त्रीय एवं संघीय मर्यादा व अनुशासन में आपकी जागरूकता स्तुत्य है।

आचार्य की दूसरी कसौटी है–सत्यवादिता। सत्य के दो अर्थ उपलब्ध हैं–1. यथार्थ वचन एवं 2. प्रतिज्ञा निर्वाह में समर्थ। यथार्थवादी पुरुष ही यथार्थ का प्रतिपादन कर सकता है। जो की हुई प्रतिज्ञा

के निर्वाह में समर्थ होता है, वही दूसरों में विश्वास उत्पन्न कर सकता है। गणी दूसरों के लिए विश्वस्त होना चाहिए। इन गुणों से सुशोभित गणपालक ही आदेय होते हैं। आचार्य महाश्रमणजी में यथार्थ वचन एवं प्रतिज्ञा निर्वाह में समर्थ ये दोनों ही गुण उत्कृष्टता के साथ विद्यमान है। भाषा का प्रयोग यदि सीखना हो तो आचार्य महाश्रमणजी से सीखा जा सकता है। भाषा के प्रयोग के प्रति इतनी जागरूकता विरल पुरुषों में ही मिलती है। आपका हर संभाषण सत्य की आराधना का जीवंत दिग्दर्शन है। कृतप्रतिज्ञा का, कथित वचनों का परिपालन आपके व्यक्तित्व की उत्कृष्ट विशेषता है।

मेधा संपन्नता आचार्य की तीसरी योग्यता है। जो व्यक्ति तीक्ष्ण बुद्धि एवं स्मृति से संपन्न होता है, वही श्रुत ग्रहण कर अपने शिष्यों को उसका अध्यापन कराने में समर्थ हो सकता है। आचार्यश्री महाश्रमणजी प्रारंभ से ही मेधा संपन्न रहे हैं। अपनी इस योग्यता के द्वारा ही आप संस्कृत, प्राकृत, अंग्रेजी, हिंदी आदि भाषाओं में दक्षता के साथ-साथ आगम, दर्शन, व्याकरण आदि अनेक विषयों के पारगामी विद्वान हैं। तेरापंथ धर्मसंघ ऐसे मेधावी आचार्य को प्राप्त कर धन्यता की अनुभूति कर रहा है।

बहुश्रुतता आचार्य की चतुर्थ योग्यता मानी गई है। जैन परंपरा में बहुश्रुत व्यक्ति का अत्यंत सम्मानजनक स्थान रहा है। उसे गण का एकमात्र उपष्टंभ स्वीकार किया गया है। स्थानांगसूत्र की टीका में बहुश्रुत की व्याख्या के प्रसंग में बताया गया कि जो गणनायक बहुश्रुत नहीं होता, वह गण का अनुपकारी होता है। वह अपने शिष्यों की ज्ञान संपदा कैसे बढ़ा सकता है? जो गण या कुल बहुश्रुत की निश्रा में रहता है, उसका विस्तार नहीं हो सकता। अगीतार्थ व्यक्ति बाल वृद्ध कुल गच्छ का सम्यक प्रवर्तन नहीं कर पाता। अत: आचार्य का बहुश्रुत होना आवश्यक है। आचार्य महाश्रमणजी इस कसौटी पर भी खरे उतरते हैं।

आचार्य की पांचवीं योग्यता है–शक्ति संपन्नता। शक्तिहीन व्यक्ति गण का आलंबन नहीं बन सकता। स्थानांगसूत्र की वृत्ति में शक्ति संपन्नता के चार प्रकार बतलाएं हैं–1. शरीर से स्वस्थ एवं दृढ़ संहनन वाला। 2. मंत्र के विधि-विधानों का ज्ञाता तथा अनेक मंत्रों की सिद्धियों से संपन्न। 3. तंत्र की सिद्धियों में संपन्न। 4. विशिष्ट शिष्य संपदा से युक्त अर्थात् विविध विषयों में निष्णात शिष्यों में परिवृत। आचार्य महाश्रमणजी उपर्युक्त अर्हताओं से युक्त हैं एवं उनके विकास में भी सतत प्रयत्नशील हैं।

आचार्य की छठी अर्हता है–अल्पाधिकरणता। अधिकरण का अर्थ है–कलह या विग्रह। जो कलह एवं विग्रह से रहित होता है वही आचार्यपद के योग्य होता है। जो पुरुष स्वपक्ष या परपक्ष के साथ कलह करता रहता है उसका गौरव नहीं बढ़ता। जिसके प्रति गुरुत्व की भावना नहीं होती वह व्यक्ति गण को लाभान्वित नहीं कर सकता। आचार्यश्री महाश्रमणजी का जीवन उपशम रस का महासागर है। कषाय की प्रतनुता उनके व्यक्तित्व की विशेष मुखर विशेषता है। उनके वदन कमल पर निरंतर थिरकते हुए उपशम रस का अनुभव किया जा सकता है। आपके उपशम रस से संभृत आभामंडल में आकर अनेक साधक अपनी साधना का पथ प्रशस्त करते हैं। आपकी उपशांत वृत्ति सबके लिए विशेष आकर्षण का केंद्र है। हर भक्त ऐसे गुरु को प्राप्त कर धन्यता की अनुभूति कर रहा है। आप युगों-युगों तक धर्मशासन की अनुशासना करते रहें। ऐसे महिमामंडित व्यक्तित्व की वर्धापना उत्तराध्ययन सूत्र के 'नमिपव्वज्जा' अध्ययन में आगत श्लोकों से करना चाहूंगी। जब इन्द्र राजर्षि नमि की अभिवंदना करता हुआ कहता है–

'अहो! ते निज्जिओ कोहो, अहो! ते माणो पराजिओ।
अहो! ते निरक्किया माया, अहो! ते लोभो वसीकओ।।
अहो! ते अज्जवं साहु, अहो! ते साहु मद्दवं।
अहो! ते उत्तमा खंती, अहो! ते मुत्ति उत्तमा।।'

तेरापंथ धर्मशासन, जैन शासन एवं संपूर्ण मानवजाति आपके मार्गदर्शन को प्राप्त कर अध्यात्म के क्षेत्र में आरोहण करती रहे। ❑

प्रबंधन के प्रयोगधर्मा महर्षि

मुनि पीयूष कुमार

दो युगप्रधान आचार्यों का शासनकाल बीत गया। अनगिनत अवदान, अंतहीन अपेक्षाएं और भीमकाय संस्थाएं–जिनका एकमात्र केंद्र आचार्य महाश्रमण। प्रारंभ में अंतर्मुखी, अल्पभाषी और आत्मकेंद्रित व्यक्तित्व के रूप में आपकी एक छवि थी, पर अब मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि आचार्य महाश्रमण न सिर्फ प्रबंधन कला के विशेषज्ञ हैं, अपितु उनका जीवन अपने आपमें प्रबंधन का विद्यालय है। आइए, प्रवेश करते हैं इस विद्यालय में वे प्रबंधन सूत्र सीखने के लिए, जो आम व्यक्ति के रूप में हमारे जीवन को भी बेहतरीन और प्रभावशाली बना सकते हैं।

प्रबंधन एक ऐसी कला है जो किसी व्यक्ति को अपने कार्यक्षेत्र में समय, श्रम और संसाधनों के समुचित उपयोग द्वारा उनका अधिकतम लाभ उठाना सिखाती है। वर्तमान के प्रतिस्पर्द्धावादी माहौल में श्रेष्ठ प्रबंधकों की मांग इतनी ज्यादा है कि बेहिसाब प्रबंधन संस्थान बाजारों में उग आए हैं जिनमें अनेकानेक क्षेत्रों में प्रबंधन का अध्ययन करवाया जाता है। प्रबंधन के अनेक भेद किए जा सकते हैं। लेकिन तीन प्राथमिक प्रकारों में आमतौर पर अधिकांश विषयों का स्पर्श हो सकता है यथा–स्व-प्रबंधन, जन-प्रबंधन और संस्था-प्रबंधन। इसके अतिरिक्त भी आयोजन–प्रबंधन, कार्यालय-प्रबंधन आदि प्रशाखाएं इस क्षेत्र में उपलब्ध हैं लेकिन इन्हें उपरोक्त तीन प्राथमिक प्रकारों में भी अंतर्गर्भित किया जा सकता है।

आचार्य महाश्रमण चूंकि एक दीर्घकाय संघ के आध्यात्मिक प्रमुख हैं अत: प्रबंधन की अधिकांश शाखाओं से उनका साबका पड़ता ही रहता है। इस अपेक्षा से शोधकर्ताओं के लिए यह विषय भरपूर संभावनाओं वाला है।

स्व-प्रबंधन

एक महान नेतृत्वकर्ता के लिए प्राथमिक अपेक्षा है कि उसका अपना जीवन सुनियोजित हो। इस दृष्टि से आचार्य महाश्रमण का जीवन एक आदर्श है। अत्यधिक व्यस्त दिनचर्या के बीच भी आप जिस प्रकार साधना, स्वास्थ्य और समय प्रबंधन का ध्यान रखते हैं वह एक आश्चर्य से कम नहीं है। प्रात: चार बजे जागरण और उसके बाद स्वाध्याय, जप, ध्यान, प्रतिक्रमण आदि आपकी साधना के नियमित क्रम हैं। सूर्योदय के पश्चात भ्रमण, योग और कायोत्सर्ग जहां आपके शरीर को ऊर्जावान बनाए रखते हैं, वहीं सात्विक एवं संयमित भोजन के माध्यम से आप अपने आपको शारीरिक दृष्टि से संतुलित बनाते हैं। इन सबके बीच आप अपनी ज्ञान-पिपासा को परितृप्त करने के लिए आगम एवं अन्य धर्मग्रंथों का अध्ययन भी करते रहते हैं।

स्व-प्रबंधन का ही एक हिस्सा है दिनचर्या-प्रबंधन और इस मामले में तो आप इतने निष्णात हैं कि आचार्य महाप्रज्ञ के जीवन काल में भी महाश्रमणजी की डायरी ही सभी कार्यक्रमों का निर्धारण करती थी। इस संदर्भ में गुरुदेव का स्पष्ट कथन था–सूचना तो भले यहां हो, मूल निर्धारण सारा युवाचार्यश्री के पास ही हो। एक बार किसी घटना प्रसंग के दौरान महाप्रज्ञजी ने कहा था–इनकी डायरी हमें भी चलाती है। मूल सैटिंग सारी इन्हीं के पास है।

व्यक्ति-प्रबंधन

एक धर्माचार्य होने के नाते आपको प्रतिदिन सैकड़ों, हजारों व्यक्तियों से नियमित साक्षात्कार करना होता है। हर व्यक्ति चाहता है कि आप कम से कम कुछ देर के लिए उससे बात करें अथवा उनकी वंदना स्वीकार करें। बहुत सारे लोग मात्र चरण स्पर्श से भी इतने प्रसन्न हो जाते हैं मानो उन्हें भगवान मिल गए हों। इतने व्यक्तियों की आशाओं को पूर्ण करना एक सुनियोजित प्रबंधन के बिना संभव नहीं है।

आपने अपने इर्द-गिर्द रहने वाले साधुओं को इस तरह प्रशिक्षित कर रखा है कि बाहर से आने वाला प्रत्येक व्यक्ति वहां आकर कुछ न कुछ प्राप्त कर सके। विभिन्न रुचि वाले लोगों की अपेक्षाओं के लिए विभिन्न संतों को जिम्मेदारियां दी जाती हैं। यथा– जैनदर्शन का अध्ययन करवाना, प्रेक्षाध्यान करवाना, जीवन की समस्याओं का आध्यात्मिक समाधान देना, नशा मुक्ति अथवा अन्य लोक चेतना को जागृत करने वाले विषयों पर कार्य करने हेतु अलग-अलग मुनियों को नियुक्त किया गया है।

व्यक्ति प्रबंधन का सबसे जटिल पक्ष है साधु साध्वियों के जीवन को समुचित दिशा देना। सात सौ से भी अधिक साधु-साध्वी एवं समण-समणियां जो अपने घर-बार और परिवार को छोड़कर आपकी शरण में साधना कर रहे हैं उनकी शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक समस्याओं का समाधान करना एक गुरु होने के नाते आपका प्राथमिक कर्तव्य है।

इस कर्तव्य का निर्वहन करने के लिए एक-एक व्यक्ति के मनोविज्ञान को समझना होता है। प्रत्येक साधक की शारीरिक एवं स्वास्थ्यजनित अपेक्षाओं की पूर्ति करना मुश्किल होता है, लेकिन न सिर्फ आप इसे बखूबी निभा रहे हैं, अपितु अपनी सुव्यवस्थाओं के माध्यम से आपने साधु-साध्वी समुदाय के दिल में अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान बनाया है।

संस्था प्रबंधन

तेरापंथ के आचार्यों की सात पीढ़ियों तक किसी प्रकार की संस्था का अस्तित्व नहीं था। सब कुछ वैयक्तिक आधारों पर चलता था। जैसे राजा देश का जन्मजात प्रमुख होता है वैसे ही समाज में प्रभुत्वशाली व्यक्ति स्वतः ही प्रमुख कहलाते थे। धीरे-धीरे लोकतंत्र की सुगबुगाहट होने लगी और तेरापंथ समाज में 'जैन श्वेताम्बर तेरापंथी सभा, कलकत्ता' अस्तित्व में आई। आज समाज में दसों केंद्रीय संस्थाएं और उनकी देश-विदेशों में फैली हजारों शाखाएं हैं। संस्थाओं के इतने बड़े नेटवर्क की शक्ति को अध्यात्म के प्रचार-प्रसार में उपयोगी बनाए रखने के लिए समुचित प्रबंधन की अपेक्षा होती है।

आचार्य महाश्रमण ने आचार्य बनने के बाद संघीय संस्थाओं की समुचित सार संभाल कर अनावश्यक संस्थाओं को अस्तित्व विहीन एवं कुछ संस्थाओं को संक्षिप्त करने की पहल की। उन्होंने सभी केंद्रीय संस्थाओं के मुख्य अधिकारियों की मासिक सामूहिक संगोष्ठी का प्रारंभ किया जिससे संस्थाओं में आपसी तालमेल बढ़ा और हर संस्था को अलग-अलग समय देने के कारण साधना में लगने वाले समय की क्षति रुकी। संस्थाओं में आपसी अंतर्संवाद के दौरान खुली-चर्चा को प्रोत्साहन देने से भी नेतृत्व और अनुयायियों के संबंध मजबूत बनते हैं और जमीनी सत्य भी उभरकर सामने आते हैं। इसका लाभ भी आचार्यश्री को अपने निर्णयों में मिला है। समीक्षा परिषद और कल्याण परिषद का गठन भी संस्था प्रबंधन के क्षेत्र में मील का पत्थर है।

समय-समय पर आयोजित होने वाले वृहद संघीय आयोजन भी संस्था की रीढ़ होते हैं क्योंकि इनके माध्यम से संस्थाओं को समाज के लोगों से मिलने का मौका प्राप्त होता है। ऐसे आयोजनों को भी वस्तुनिष्ठ उपलब्धियों से भरपूर बनाकर आपने उन्हें गरिमा प्रदान की है। जैसे मर्यादा-महोत्सव के अवसर पर साधु-साध्वियों एवं श्रावक-श्राविकाओं से संबंधित

दिशा-निर्देशों का परिषद में वाचन होने से लोगों को नई-नई जानकारियां मिलती हैं और कार्यक्रम भी अधिक निष्पत्तिमूलक बन जाता है। इसी प्रकार श्रावक-श्राविकाओं को अलंकरण प्रदान करने का क्रम भी साल में दो दिनों-मर्यादा-महोत्सव एवं विकास-महोत्सव के दौरान सीमित करने से भी इन आयोजनों को विशिष्टता मिलेगी।

प्रबंधन के जीवन-सूत्र

आचार्यप्रवर के जीवन में कुछेक ऐसे सूत्र उपलब्ध होते हैं जो किसी नेतृत्वकर्ता के लिए प्राण ऊर्जा का कार्य कर सकते हैं। इनमें एक सूत्र है–कम बोलना, अधिक सुनना। आचार्यश्री के साथ जब भी वार्तालाप होता है इस तथ्य को हमेशा महसूस किया जा सकता है कि वे बहुत कम बातों पर प्रतिक्रिया देते हैं अधिकांश बातों को सुनकर वे या तो मुस्कुरा देते हैं या मौन रह जाते हैं। कभी-कभार यदि कुछ कहते भी हैं तो आपके शब्द हमेशा संक्षिप्त एवं तथ्यात्मक होते हैं। भाषा का विवेक जैन साधुचर्या का एक सहज अंग है लेकिन आचार्यप्रवर में इस विवेक को लेकर जितनी जागरूकता है उतनी कम ही जगह देखने को मिलती है।

आचार्यश्री का एक और जीवन सूत्र है–'नया लाने से महत्त्वपूर्ण पुराने को संभालना'। हम देखते हैं तेरापंथ में पिछली शताब्दी के दौरान अनेकों महत्त्वपूर्ण आयामों का श्रीगणेश हुआ। वहीं आचार्य महाश्रमण नए आयामों की बजाय गुरुओं द्वारा प्रारंभ किए गए कार्यक्रमों पर ही ध्यान केंद्रित कर रहे हैं। आचार्यश्री जमीन से जुड़े लोगों को खास तवज्जो देते हैं और अपने सलाहकारों में बुजुर्ग एवं अनुभवी लोगों को जोड़े रखते हैं। प्रबंधन के महान प्रयोगधर्मा, ऋषि जीवन के छठे दशक में भी अपनी संतुलित और सुनियोजित जीवन शैली के कारण एक युवा की तरह सक्षम और ऊर्जावान नजर आ रहे हैं। ❑

हे दिव्य चरण! नभ सहस्र किरण!

गतिशील रहो तुम, जग तिमिर हरो।
तेज पुंज प्राकार लिए
सकल शक्ति साकार लिए
सत्य श्रेष्ठ संस्कार लिए
शुद्धाचार विचार लिए
संयम का श्रृंगार लिए
व्यवहार लिए आचार लिए
सृष्टि का संचार लिए
आत्मा का अलोक जगाने को
मुक्ति का मार्ग दिखाने को
साहस संगीत सुनाने को
मानव को महान बनाने को
अमृत से प्यास बुझाने को
हे शीतल शशधर! बन करुणा घन
पीयूष प्रसरण करो, जग उत्ताप हरो
हे दिव्य चरण! नभ सहस्र किरण।
जन जागृति अभियान लिए
मानव मन कल्याण लिए
अनुकंपा का अवदान लिए
सिद्धि का संधान लिए
प्रज्ञा का प्रणिधान लिए
अरमान लिए वरदान लिए
ब्रह्मा का फरमान लिए
प्रज्ञा का दीप जलाने को
चेतन को बुद्ध बनाने को
प्राणों का अर्घ्य चढ़ाने को
कर्मों को तोड़ गिराने को
नव इतिहास गढ़ाने को
हे ज्योतिर्धर, अन्त: चेतन! बन जीवन धन
विश्वास भरो तुम, शुभ आश्वास करो
सृष्टि संगायक! मिट जाए भौतिक आकर्षण
हे दिव्य चरण! नभ सहस्र किरण.......

मुनि जयकुमार

वीर्य से विभुता की ओर आचार्य महाश्रमण

साध्वी राजीमती

निर्माण शब्द बहुत व्यापक है और बहुत आकर्षक भी। बिना निर्माण के न वस्तु सुंदर बनती है और न व्यक्ति। वस्तु का निर्माण बाहर से होता है जबकि व्यक्ति का निर्माण बाहर और भीतर दोनों तरफ से होता है। वह अपने द्वारा अधिक होता है और कुछ प्रतिशत दूसरों के द्वारा।

आचार्यश्री महाश्रमणजी बचपन में स्वयं के द्वारा अच्छे अनुशासित थे और देवी स्वरूपा अपनी माता के प्रति विनम्र बनते गए और अपनी सहज विनम्रता के कारण परिवार का स्वस्थ संरक्षण पाते गए।

माता-पिता का अनुशासन प्रकट और अप्रकट दोनों रूपों में काम करता है। नियति अपनी होती है—वैसे ही सुयोग मिलते रहते हैं। व्यक्तित्व निर्माण के कुछ घटक होते हैं उनमें सबसे पहला सही घटक यही होता है, वह स्वयं को पसंद करे अर्थात् स्वयं के विचार और व्यवहार को तथा क्रिया और प्रतिक्रिया को पसंद करे। जो स्वयं से असंतुष्ट रहता है वह छली होता है तथा जो स्वयं से संतुष्ट रहता है वह बली होता है। आपके व्यक्तित्व की रचना में यह विशिष्टता रही है। संतोष प्रसन्नता को लाता है और प्रसन्नता महानता को।

दो तरह के बीज होते हैं। कुछ समय के साथ फूटते हैं और कुछ समय से पूर्व। जो अपनी उपस्थिति के साथ 'मैं हूं' यह प्रमाणित कर दे वह विशिष्ट जीवंत व्यक्तित्व का धनी होता है। दूसरों पर निर्भर जीवन जीना एवं दूसरों की नजर में अच्छा दीखने का प्रयास करना, यह सामान्य व्यक्ति की बात है। आप इन सभी सामान्य, तुच्छ वृत्तियों से दूर ही नहीं, अति दूर थे। बचपन की सरलता को इन्हीं गुणों के कारण लंबे समय तक जीवित रखा जा सकता है।

एक बार की बात है किसी ने आपसे कहा—'मैं जो बात कह रहा हूं वह आप अमुक को बताए नहीं।' आपने तत्काल कहा—'यह कैसे? समय पर कहा भी जा सकता है—मैं कहूंगा।'

जीवन निर्माण में नींद का बहुत बड़ा महत्त्व है। इसलिए उसकी गहनता और शुद्धता पर ध्यान दिया जाता है। आपने मानव को सलाह देते हुए कहा है—**सपने पूरे नहीं बल्कि संकल्प पूरे होते हैं।** यह संकल्प शक्ति उन्हीं व्यक्तियों की जागती है जिनकी नींद मात्र शयन क्रिया नहीं होकर मौन, ध्यान और संकल्प में बदलती है। महान व्यक्तियों की नींद

अपने संकल्प से जुड़ी रहती है। स्वप्नपूर्ति में सहयोग करती है।

सूत्रकृतांग सूत्र का आठवां अध्ययन है–वीर्य। जिसके आमुख में नौ प्रकार के आध्यात्मिक वीर्य का वर्णन दिया गया है। एक विचारधारा है कि व्यक्ति में अनंत शक्तियां होती हैं। उन शक्तियों का प्रस्फोट कौन कितना और कब करता है, यह जातक के क्षयोपशम की बात है परंतु यह स्पष्ट है कि शक्तियों का जागरण वीर्य से, पुरुषार्थ से होता है। बीज से बीज आता है, शक्ति से शक्ति।

वीर्य की नौ विधाएं

1. उद्यमवीर्य	2. धृतिवीर्य	3. धीरतावीर्य
4. शौंडीर्यवीर्य	5. क्षमावीर्य	6. गांभीर्यवीर्य
7. उपयोगवीर्य	8. योगवीर्य	9. तपोवीर्य।

आचार्यों की अंतरंग परिषद के सदस्य श्रमण होते हैं। वे उनकी दिनचर्या, निशाचर्या आदि संपूर्ण चर्या के निकटतम साक्षी होते हैं। परंतु मैंने जैसा देखा, जाना और पढ़ा उस आधार पर अपने विचार लिख रही हूं।

1. उद्यमवीर्य–ज्ञान की प्राप्ति में अथवा तप के अनुष्ठान में वीर्य का प्रयोग। कहा जाता है कि मनुष्य के जीवन का निर्माण बल और करुणा इन दो तत्त्वों से होता है। आप शासक हैं, इसलिए आप में बल तो चाहिए ही चाहिए। साधक हैं, इसलिए करुणा भी। शासक और साधक दोनों एक साथ होने का मतलब है–मौलिक होना। जो जितना मौलिक होगा वह उतना ही औरों से कम विचलित होगा। अकंप रहेगा। अनेक प्रसंगों पर मैंने आपको इस रूप में देखा है। इसी विशिष्टता, अर्हता के कारण आप बड़े-बड़े निर्णय ले सके हैं। जो कम मौलिकता वाले लोग होते हैं वे अहंकार से प्रभावित हो जाते हैं।

आचार्य, जिनका हर दिन प्रशंसक-भक्तों की उपस्थिति में प्रारंभ होता है तथापि आपको निर्लिप्त चेतना की स्थिति में कार्य करते हुए देखा। क्योंकि वह वीर्य अपनी पहचान के साथ आया है। विनम्रता और निरभिमानता की धरती से निकला है।

आपके ज्ञान का स्रोत है–आगम-वीतराग वाणी। आप अनेक बार कह चुके हैं, आगम से बढ़कर ज्ञान का दूसरा पवित्र स्रोत नहीं है। आपकी आस्था आत्मा परमात्मा के बाद आगम वाणी पर है। आप बहुधा फरमाते हैं जो बत्तीस आगमों को एक बार पढ़ लेता है उसका एक भव कम हो जाता है। आपके प्रवचनों का आधार तो आगम हैं ही।

मैंने विक्रम संवत 2008 के जयपुर चतुर्मास में आपको छोटी-सी वय में उत्तराध्ययन में स्वाध्यायरत देखा। वह प्रतिमा आज भी आंखों में कैद है।

भले आपने लंबी तपस्यांए नहीं की, किंतु आचार्य महाप्रज्ञजी ने आपको **महातपस्वी** संबोधन देकर यह स्पष्ट कर दिया कि इनके जीवन में कठोर तप है। बाह्य और आभ्यंतर दोनों ही प्रकार के तप का सुयोग है। इन पांच वर्षों में तो यह तपोकल्प वृक्ष सतत हरा-भरा दिखाई दे रहा है। कभी विगय-वर्जन, कभी द्रव्य-सीमा, कभी प्रहरसी, नवकारसी, एकाशन और कभी उपवास।

2. धृतिवीर्य–आपने भगवान महावीर की धृति को जीवन का ध्येय बनाया। उनकी धृति मेरे में सक्रांत हो। 'पन्नगे च सुरेन्द्रे च' यह श्लोक और 'वीरत्थुई' का दैनिक स्वाध्याय इसी लक्ष्य की संपूर्ति में संप्रेरित है। संयम में अविचल धृतिमत्ता के अनेक प्रसंग आपकी जीवनी से संबद्ध हैं।

मुनि जीवन का एक प्रसंग। आप जिस ग्रुप में थे वे मुनि तेरापंथ के अनुशासन से मुक्त होना चाहते थे। परंतु आपने उनका साथ नहीं दिया। अविचल रहे। किसी भी बात से प्रभावित नहीं हुए। यह आपका धृतिवीर्य था।

3. धीरतावीर्य–कष्ट सहने की क्षमता का विकास होना। प्रतिकूलता मे जीवन का रस सूखना नहीं चाहिए। यह जीवन की आध्यात्मिक सुरक्षा है। हमारे आचार्यवर ने इस सहिष्णुता का कितना विकास किया है, यह माप कर बताना कठिन है।

- रास्ते में तेज गर्मी एवं लंबी पद यात्रा के कारण प्यास लगे तथापि पानी का संयम।
- आहार करते समय यदि किसी वस्तु में स्वाद का भाव आ गया तो उस वस्तु का परित्याग।
- कंबल जैसे साधनों का अल्पीकरण ताकि संतों को वजन नहीं उठाना पड़े।
- भीषण गर्मी में भी आधुनिक सुविधाओं का उपयोग नहीं करना।
- पैरों में छाले पड़ गए तथापि दवा न लगाने का संकल्प।
- असह्य गर्मी के बावजूद हवा की सुविधा के लिए अपने पट्ट को इधर उधर नहीं सरकाना।

4. **शौंडीर्यवीर्य**–यह एक प्रकार का विशिष्ट वीर्य होता है, जिसके कारण साधक दृढ़ संकल्प-चेतना वाला हो जाता है। वह साधक सोचता है, कहता है कि कोई भी परिस्थिति मेरे संकल्प को नहीं तोड़ सकती। ऐसी ही अविचल एवं अप्रभावित चेतना वाले हैं–आचार्य महाश्रमण।

5. **क्षमावीर्य**–आचार्य महाश्रमण ने इन शक्तियों, क्षमताओं को कैसे प्राप्त किया, यह अब तक दुर्ज्ञेय जैसा बना हुआ है। संभव है, हमारे निवेदन पर कभी गुर बताना चाहेंगे।

मैंने समीक्षा-गोष्ठियों में कई बार अनुभव किया कि कुछ ऐसे प्रसंग, जिनमें उपस्थित सदस्य अपने-अपने विचार निवेदन कर रहे थे। लगभग सभी के विचार आचार्यवर के भावी निर्णय से भिन्न थे तथापि गुरुदेव पूर्ण रुचि, प्रसन्नता के साथ सुन रहे थे। व्यक्तित्व का एक सर्वश्रेष्ठ गुण है–श्रोता होना। दिल और दिमाग दोनों से वक्ता की बात सुनना।

आप जब किसी मर्यादा को लिखित करवाते तब लगता कि आपकी भाषा शैली केवल स्पष्ट, संक्षिप्त ही नहीं बल्कि एक कुशल सुलझे विधिवेत्ता जैसी है। अपने आपको निर्भर बनाए रखने का एक उत्तमसूत्र है। हर मर्यादा, चिंतन और आदेश-निर्देश को लिपिबद्ध करना।

6. **गांभीर्यवीर्य**–दुनिया में ऐसे विरल व्यक्ति होंगे, जिन्हें आचार्य महाश्रमण के सामने खड़ा किया जा सके। जैसे कोई अपनी पूरी बात निवेदित करने के बाद भी वह यह नहीं जान सकता कि वे मेरे समर्थन में हैं या विरोध में।

आपमें अपनी विशिष्टताओं का गर्व नहीं है। इसका प्रमाण है–किसी पद, उपाधि, अलंकरण तथा अभिनंदन पत्र को स्वीकार नहीं करना। किसी ने ठीक ही कहा है–संत प्रभाव को छुपाते हैं और स्वभाव को दिखाते हैं जबकि गृहस्थ इसके विपरीत प्रभाव को दिखाता है और स्वभाव को छुपाता है।

7. **उपयोगवीर्य**–जो तत्त्व दर्शन एवं ज्ञेय की गहराई में जाने की मेधा, प्रतिभा रखता है। आप गहन जिज्ञासु वृत्ति के आचार्य हैं।

सिरियारी चतुर्मास में आचार्य महाप्रज्ञजी के सान्निध्य में नवपदार्थ का वाचन चल रहा था। कभी-कभी ऐसे गहन विषयों की चर्चा होती जिनमें आपके तर्क अकाट्य होते। हम सबको चिंतन के लिए कह दिया जाता। आप जैसे जिज्ञासु शिष्य का होना आचार्य महाप्रज्ञजी की दृष्टि में अपने सौभाग्य और संघ-शोभा की बात की।

8. **योगवीर्य**–मनोवीर्य, वचनवीर्य और कायवीर्य से संपन्न होना बड़ी अर्हता होती है। आपका मनोबल चैतसिक पवित्रता, पॉजीटिव चिंतन व्यंजनलब्धि, निर्णय की अपरिवर्तनीयता आदि योगवीर्य के प्रमाण हैं। आज की भाषा में योग के प्रयोग भी हो सकते हैं। जहां चित्त-समाधि और स्वास्थ्य का प्रश्न है वहां परिवर्तन का पूरा अवकाश है।

9. **तपोवीर्य**–आपकी तपस्याएं, चारित्रिक निर्मलता, समिति गुप्तियों की जागरूकता और अनुत्तर अनासक्ति पूरे धर्मसंघ के लिए दिव्य प्रेरणा एवं खुला संदेश है। युगों युगों तक यह संदेश मिलता रहे, इसी मंगल भावना के साथ। ❑

कल्पना भरी कमनीय कृति

आचार्य महाश्रमण के पदारोहण दिवस पर अभिवंदना में प्रस्तुत है श्रीमती शीला संचेती, सरदारशहर द्वारा निर्मित कला वैभव से भरी कमनीय कृति। जैन भारती के सुधि पाठकों के लिए इस मई अंक में यह सुन्दर कलाकृति विशेष संदर्भ में दी जा रही है। मई महीना हमारे लिए बहुत महत्त्वपूर्ण बन गया है, क्योंकि इस महीने में एक महान व्यक्तित्व ने तीन बार नया जन्म लिया है–

1. झूमर–नेमा के कुल दूगड परिवार में मानव देह में जनमे।
2. गुरु तुलसी की आज्ञा से मुनि सुमेरमलजी द्वारा संसार से विरक्त होकर दीक्षित हुए। दीक्षा संस्कार भी नया जन्म माना जाता है।
3. आचार्य महाप्रज्ञ ने जैन तेरापंथ धर्मसंघ के ग्यारहवें आचार्य पद के लिए अपने उत्तराधिकारी के रूप में युवाचार्य के लिए चयन किया। यह रूप भी नए जन्म की नई पयार्य बन गया।

पदाभिषेक दिवस पर आचार्य अभिवंदना में प्रस्तुत इस कलाकृति में आचार्य श्री की अभिवंदना में स्वयं **ऐरावत हाथी** अभिवंदना करते हुए दर्शाया गया है। ऐरावत हाथी के पांव से लेकर पैरों तक कलाकार ने नई कल्पना की उद्भावना की है–आचार्य का जीवन अध्यात्म का अमृत होता है। अमृत के तीन अक्षरों (**अ मृ त**) शब्द को उकेरते हुए इस कृति में अष्ट मंगल को चित्रात्मक भाषा में अभिषेक की संस्कृति के रूप में व्यक्त किया है।

आचार्य प्रवर का व्यक्तित्व, कर्तृत्व और नेतृत्व नौ मंगल भावनाओं से–**ह्री, धी, श्री, धृति, शक्ति, शांति, नंदी, तेजस, और शुक्ल**–भावित होता रहे, यह मानव–जाति की ओर से शुभकामनाएं प्रकट की गई हैं। महाश्रमण शब्द के प्रतीक रूप अंग्रेजी के तीन अक्षरों में अंकित किया है–

A आचार्य के करों में ज्ञान और दर्शन के दीप जलते रहें।

M महाश्रमण–(संघ समाहित होता है महाश्रमणों के महाश्रमण में) अतः संघ की उपमाएं– सूर्य, चन्द्रमा, समुद्र, चक्र, नगर, रथ, कमल और पर्वत अंकित कर आचार्य को संघीय सात उपमाओं–संपदाओं से सम्पन्न बताया गया है।

S श्रमण–जो श्रमण होता है, उसमें ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप होता है। हाथी के शीश पर **महाव्रतों का मुकुट** और ऊपर दश आचार्यों की **छत्र छाया** है।(प्रत्येक बिंदु में आचार्यों का पहला अक्षर दर्शित है।)

चित्रात्मक कृति समर्पित है आस्था और समर्पण के साथ। हम शुभकामना करते हैं कि आचार्य महाश्रमण युगों–युगों तक अपनी यशस्वी, वर्चस्वी और तेजस्वी अनुशासना से जन–कल्याण करते रहे।

सम्पादक

पर्युषण पर्वाराधना हेतु

उपासक मांग पत्र

दिनांकः..../..../2014

सादर निवेदनार्थ

परमपूज्य आचार्यवर

परमपूज्य गुरुदेव के पावन चरणों में भक्तिपूर्वक वंदना करते हुए आगामी पर्युषण पर्वाराधना हेतु हमारे क्षेत्र में उपासक भिजवाने का विनम्र निवेदन कर रहे हैं। इस संदर्भ में संक्षिप्त जानकारी इस प्रकार है–

क्षेत्र का नाम :..

श्रद्धा के खुले घरों की संख्या :...

पूरा पता :..

....

संपर्क सूत्र :...

....

(जिम्मेदार व्यक्ति/व्यक्तियों का नाम व फोन नम्बर) :..

हम इस संदर्भ में व्यवस्थाएं आदि के बारे में पूर्ण जागरूकता के साथ दायित्व का निर्वहन करेंगे।

हस्ताक्षर

नोट –

1. जिन क्षेत्रों को पर्युषण पर्वाराधना हेतु उपासक बुलाने हों, कृपया वे उपासक मांग पत्र भरकर निम्न पते पर भिजवाएं।
2. पर्युषण से पूर्व अथवा अन्य अवसरों पर उपासक बुलाने हों तो अलग से निवेदन करें।
3. कृपया मांग पत्र 15 जून 2014 तक प्रेषित करें। समय पर प्राप्त पत्रों को प्राथमिकता प्रदान करने का प्रयास रहेगा।

(उपासक मांग पत्र)

निवेदनार्थ – परमपूज्य आचार्यप्रवर

अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य महाश्रमण प्रवास व्यवस्था समिति, दिल्ली

अध्यात्म साधना केन्द्र, छत्तरपुर मंदिर रोड, महरौली, नई दिल्ली – 110 074

संपर्क सूत्र : श्री रतनलाल चौपड़ा–9461122551, श्री हेमन्त बैद – 9672996960

email : campoffice13@gmail.com

जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा

सूचना

उपासक प्रशिक्षण शिविर

(दिनांक 16 जुलाई से 26 जुलाई 2014)

परम पूज्य गुरुदेव के पावन सान्निध्य में एवं जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा के तत्त्वावधान में आगामी 16 जुलाई से 26 जुलाई तक दिल्ली में उपासक प्रशिक्षण शिविर का आयोजन होने जा रहा है।

नए उपासक बनने वालों के लिए

दिनांक 16 जुलाई को मध्याह्न में प्रवेश परीक्षा आयोजित होगी। प्रवेश परीक्षा में चयनित भाई-बहनों को ही शिविर में प्रवेश दिया जा सकेगा। प्रशिक्षण के पश्चात 24 जुलाई को चयन प्रक्रिया (परीक्षा) होगी।

सहयोगी से प्रवक्ता उपासक बनने वालों के लिए

जो सहयोगी उपासक दो बार या उससे अधिक पर्युषण यात्रा कर चुके हैं एवं प्रवक्ता उपासक बनना चाहते हैं उनके लिए निर्धारित पाठ्यक्रमानुसार चयन प्रक्रिया (परीक्षा) का आयोजन दिनांक 24 जुलाई को किया गया है। लिखित, वक्तृत्व शैली व समूह चर्चा (Group Discussion) इन तीन रूपों में चयन प्रक्रिया होगी। प्रशिक्षण हेतु 20 जुलाई से संपर्क कक्षाएं (Contact Classes) आयोजित होंगी, इनमें अवश्य भाग लें।

उपासक सम्मेलन

दिनांक 24, 25 व 26 जुलाई को त्रिदिवसीय प्रवक्ता उपासकों का सम्मेलन आयोजित किया गया है। सभी प्रवक्ता उपासक इसमें अवश्य भाग लें। सहयोगी उपासकों की उपस्थिति स्वैच्छिक है।

इस बारे में अधिक जानकारी के लिए उपासक श्रेणी के राष्ट्रीय संयोजक डालिमचंद नौलखा 09327071376 एवं सह-संयोजक महाबीर प्रताप दूगड़, मो. 09331019455 पर संपर्क किया जा सकता है

कमल कुमार दूगड़
अध्यक्ष

विनोद बैद
महामंत्री

जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा

(ISO 9001 : 2008 प्रमाणित संस्था)

3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता 700001

दूरभाष : (033) 22357956, 22343598, फैक्स : (033) 22343666

विनोद बैद, जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता-1

के लिए जैन भारती कार्यालय, गंगाशहर, बीकानेर (राज.) से प्रकाशित एवं प्रेषित और सांखला प्रिंटर्स, बीकानेर द्वारा मुद्रित।

हार्दिक शुभकामनाओं सहित

B.N. GROUP

स्व. श्री बच्छराजजी-रतनीदेवी नाहटा

की पुण्य स्मृति में

शासनसेवी

बिमल-सुशीला, संदीप-मीता

सलोनी, प्रियंक, सांची नाहटा

सरदारशहर-गुवाहाटी

KAMAKHYA UMANANDA BHAWAN

A.T. ROAD, GUWAHATI 781001 (ASSAM)

जैन भारती, मई, 2014 ■ प्रेषण दिनांक 15 मई, 2014
भारत सरकार पं. सं. : 2643/57 ■ डाक पंजीयन संख्या : बीकानेर/048/2012-2014

शासनसेवी बुद्धमल दुगड़
सुरेन्द्रकुमार, तुलसीकुमार, कमलकुमार दुगड़
(कल्याण मित्र दुगड़ परिवार)

के.बी.डी. फाउण्डेशन
बुद्धमल सुरेन्द्र दुगड़ फाउण्डेशन
बुद्धमल तुलसी दुगड़ फाउण्डेशन
बीएमडी कमल दुगड़ फाउण्डेशन

201/504, वैष्णो चेंबर, 6, बेब्रॉर्न रोड, कोलकाता 700001
फोन : 22254103/4889

प्रेषक : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, तेरापंथ भवन, महावीर चौक, गंगाशहर, बीकानेर 334401 • फोन : 0151-2270779

नोट : आपके पते में कोई कमी, अशुद्धि या पिन-कोड नहीं हो तो कृपया सूचित करें। ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।